सीताराम सीताराम सीताराम
श्रीमैथिली रमणो विजयते
श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः
श्रीमते भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः
श्रीसीताराम-तत्त्व-प्रकाश
नाम-रूप-लीला-धामात्मक
पूर्वार्ध
संग्रहकर्त्ता तथा प्रकाशक
'सीताशरण'
सीताराम सीताराम सीताराम

❀ ॐ गं गुरवे नमः ❀

❀ श्रीमैथिली रमणो विजयते ❀

❀ श्रीमन्मारुतनन्दनायनमः ❀

❀ श्रीमतेभगवते जगतगुरु श्रीरामानन्दाचार्यायनमः ❀

* श्रीसीताराम-तत्त्वप्रकाश *

नाम, रूप, लीला, धामात्मक--पूर्वार्द्ध

संग्रहकर्ता लेखक एवं प्रकाशकः-

अनन्त श्रीस्वामी अग्रदेवाचार्य वंशावतंश

अनन्त श्रीजानकीशरणजी महाराज "मधुकर"

तच्चरणारविन्द भ्रमर

सीताशरण

श्रीचारुशीला मन्दिर, श्रीचारुशीला बाग, श्रीजानकीघाट,

श्रीअयोध्याजी-फैजाबाद (उ०-प्र०)

प्रथम संस्करण १०२५ प्रति | माघकृष्ण सप्तमी श्रीरामानन्द जयन्ती सं० २०३२ वि० सन् १९७६ ई० | न्यौछावर १५) रु०

मुद्रक :- मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी।

पृष्ट ६८ का शेष

मन्त्रोविद्या गुरुर्देवः पूर्वलब्धो यथापतिः । प्रतिजन्मनिबन्धेन सर्वेषामुपरिस्थितः॥ १५६॥ पितागुरुश्च वन्द्यश्च यत्र जन्मनि जन्मदः । गुरवोऽन्ये तथा माता गुरुश्च प्रति-जन्मनि ॥ १६० ॥ शोक सागर में डूबती हुई भयभीत शची ब्रह्मनिष्ठ कृपालु गुरु की स्तुति करने लगी ॥१३८॥ मन्त्र देने मात्रसे गुरु होते हैं, ऐसा पंडितगण कहते हैं ॥ माता पिता अन्य गुरुओं से मन्त्र प्रदाता गुरु अधिक वन्दनीय हैं ॥ १४६ ॥ यह निश्चित है कि अदीक्षित पुरुष का उद्धार कभी भी नहीं होता । और उसकी गणना मूर्खों में होती है ॥ १४८ ॥ मन्त्रदाता गुरु, विद्या दाता गुरु और इष्टदेवता में निष्ठा पूर्व जन्म के अनुसार मिलती है । जैसे कि पूर्व जन्म के कर्मानुसार बने हुये संस्कार से ही पति या पत्नी की प्राप्ति होती है ॥ १५६ ॥ पितारूपी गुरु- जिस जन्म में जन्म देते हैं, उसी जन्म में वन्दीय होते हैं । माता आदि अन्य गुरुजनों की भी यही दशा है । परन्तु भग-वन्ममन्त्रदाता गुरु तो प्रत्येक जन्म में वन्दनीय हैं ॥ १६० ॥

प्र० २०—श्री शवरी जी के गुरु श्री मतंग जी थे; श्री शबरी जी ने गुरु सेवा की थी । वे मन्त्र जप करती थीं, इसकी पुष्टि तो श्री रामचरित मानस में श्री राम जी के वाक्यों के ही उदाहरण हैं । जो कि श्री राम जी ने शबरी जी से कहा था । नवधा भक्ति वर्णन करते हुये श्री राम जी ने श्री शबरी जी से कहा कि—गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान । और मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकाशा ॥ पुनः—सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे । वक्ताओं ने भी कहा कि— शबरी देखि राम गृह आये । गुरु के वचन समुझि जिय भाये ॥ रा० च० मा० अ० का० दो० ३५ की पक्ति सात तक ॥ श्री नारद जी ने दैत्येन्द्र हिरण्यकश्यप की रानी श्री प्रह्लाद जी की माता कयाधू को मन्त्र दीक्षा दी थी । (महाभारत देखिये) नारद जी ने राजा वस की रानी को मन्त्र दीक्षा दी थी । [विश्राम सागर] नारद जी ने पं० कृष्ण-दत्त शर्मा की पत्नी श्रीमती सुन्दरो देवी को मन्त्र दीक्षा दी थी । [विश्राम सागर] महाराष्ट्र के वरकरी सम्प्रदाय का इतिहास साक्षी है कि श्री ज्ञानेश्वर की छोटी बहिन श्री मुक्तावाई ने श्री निवृत्तिनाथ से दीक्षा ली थी । जगतगुरु भगवान् आदि श्रीशंक-राचार्य जी ने मीमांसक शिरोमणि श्री मन्डन मिश्र की विदुषी पत्नी को दीक्षा दी थी (शंकर दिग्विजय)

जगतगुरु भगवान् श्रो रामानन्दाचार्य जी महाराज ने गागरौनगढ़ाधीश श्री पांपा जी की महारानो श्री सीतासहचरी जी को मन्त्र दीक्षा दी थी (श्री रामानन्द-दिग्विजय) एवं श्री भक्तमाल ॥ और उक्त आचार्य श्री ने ही श्री सुरसुरानन्दार्य जी की धर्म पत्नी श्रीमती सुरसुर देवी को मन्त्र दीक्षा दी थी। [श्री भक्तमाल तथा महाभागवत

चरित) चित्तौड़ गढ़ाधीश्वरी श्रीमती झाली रानी और चित्तौड़ेश की पुत्र वधू महा-राणाप्रताप सिंह जी के पिता महाराणा उदयसिंह की अनुज वधू विश्व विख्यात श्री गिरिधरगोपाल जी की परम प्रिया श्री मीराबाई ने महात्मा श्री रैदास जी से मन्त्र दीक्षा ली थी (भक्तमाल) प्रमाण के लिये आज भी चित्तौड़ के श्री मीरा मन्दिर में श्री रैदास जी की छत्री और चरणपादुका उपस्थित है ।

ओरछाधीश श्री मधुकरशाह जी की महारानी श्रीमती गणेशदेई जी और आमेर की रानी श्रीमती रत्नावती जी का मन्त्र दीक्षा लेना भक्तमाल में ही प्रसिद्ध है । श्री सहजोबाई, दयाबाई और रानी सुन्दरि कुआँरि आदि की दीक्षा इतिहास प्रसिद्ध है । स्त्री को मन्त्र दीक्षा लेना अनिवार्य है । इस विषय में प्रमाणों की कमी नहीं है । प्रस्तुत पुस्तक में सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग चारों युगों में स्त्रियों ने मन्त्र दीक्षा ली है, इसका पुष्ट प्रमाण है । क्यों कि सभी प्रमाण आर्षग्रन्थों के हैं । इसलिये पाठकों को उचित है कि—वह अपनी पत्नी का यदि कल्याण चाहते हैं तो भ्रम तथा कुतर्क को त्यागकर किसी योग्य महान पुरुष से अवश्यमेव दीक्षित करवा देवें । आस्तिक व्यक्ति को तो आर्षमहर्षियों के दो चार प्रमाण ही पर्याप्त होते हैं । फिर इस पुस्तक में तो २४ दो दर्जन पुष्ट प्रमाण हैं, आवश्यकता पड़ने पर और भी प्रमाण दिये जा सकते हैं ।

जिन लोगों ने शातातप स्मृति के नाम से कल्पित श्लोक लिखा है, उन्होंने विरक्त साधुओं के सभी परमाचार्यों की महान निन्दा की है । शैवाचार्य आदि श्री शंकराचार्य, तथा श्री वैष्णवाचार्य, श्री रामानन्दाचार्य जी, श्री माधवाचार्य जी, श्री निम्बार्काचार्य जी, श्री वल्लभाचार्य जी, श्री विष्णुस्वामी जी, श्री गौरांगदेव जी, श्री चैतन्य महाप्रभु और श्री स्वामी रामानुजाचार्य जी इत्यादि सभी आचार्यगणों को, प्रकारान्तर से ब्रह्महत्या का अपराधी सिद्ध किया है । यद्यपि वे आचार्यगण तो अप-राधी नहीं हैं । परन्तु नियमानुसार किसी पर मिथ्या दोषारोपण करने वाला आरोपक ही उस अपराध का दण्डभागी बनना चाहिये । जब कि वैदिक श्रुति कहती है कि—स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम । (मु० वं० १-२-१२) क्या यह श्रुति पुरुषों के लिये ही है इस में स्त्रियों को निषेध तो नहीं कहा गया । उक्त श्रुति में स्त्री पुरुष का भेद रखकर गुरु के पास जाना नहीं बताया है । अस्तु यह वेद वाक्य सभी कल्याण चाहने वालों के लिये है । चाहे स्त्री हो या पुरुष हो । अस्तु अब पाठक खूब समझ गये होंगेकि ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य, शूद्र स्त्री पुरुष सभीको गुरुवरण करके श्री सीताराम भजन करना चाहिये माता बहिनों को इस भूल में नहीं

रहना चाहिये कि पति ही भगवान् हैं । इनकी सेवा से ही संसार से मुक्ति मिल जायेगी । पति सेवा के फल स्वरूप स्वर्ग (देव लोक) तक ही प्राप्त होना है। भगवान् की प्राप्ति या मुक्ति तो एकमात्र भगवत् भजन से ही होगी ॥ अन्यथा रा० च० मा० उ० कां० दो० १२२ देखो । अंधकार वरु रवहिं नसावै । परन्तु–रामविमुख न जीव सुख पावै ॥ वारि मथे घृत होइ वरु सिकता ते वरु तेल । विन हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल ॥ श्री भुसुंडी जी ने कहा कि—विनिश्चतं वदामि ते न अन्यथा वचांसिमें । हरिं नरा भजन्ति येऽति दुस्तरं तरन्ति ते ॥ अर्थात् यह सर्वथा निश्चित है कि जो जीव भगवान् श्री हरि का भजन करते हैं, वह अत्यन्त दुस्तर संसार सागर से पार हो जायेंगे । इसमें सन्देह नहीं है । और भगवान् श्री सीताराम जी का विना भजन किये कोई जीव कल्याण प्राप्त नहीं कर सकता ॥ लेखक—

श्रीसीतारामनाम महिमामाधुरी

अनन्त श्री स्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज द्वारा संग्रहीत श्रीसीताराम नाम प्रताप प्रकाश नामक ग्रन्थ के पृ० ७७ से उद्धृत विषय

श्री जानकी विनोद विलासे

सीतारामात्मकं ध्यानं सीतारामात्मकार्चनम् । सीतारामात्मकं नामजपं परात्परम् ॥ १ ॥ सीताविना भजेद्रामं सीतारामं विना भजेत् । कल्पकोटिसहस्रैस्तु लभते न प्रसन्नताम् ॥ २ ॥

अर्थ—श्री सीताराम जी का एक साथ ध्यान करना, तथा श्री सीताराम जी का एक साथ पूजन करना, और श्री सीताराम जी का एक साथ नाम जपना परम श्रेष्ठ साधन है । दोनों में से एक का ध्यान, पूजन, नाम जपना सामान्य है । कुछ भी न करने वालों की अपेक्षा तो वहुत ही अच्छा है । परन्तु केवल श्री सीता जी या केवल श्री राम जी का ध्यान, पूजन, नाम जपने से से पूर्णतया लाभ नहीं होने पाता । क्यों कि श्री सीताराम जी परम अभिन्न एकही तत्त्व हैं। उनमें विभाजन (वटवारा) करने की आवश्यकता नहीं है । श्री सीता जी और श्री राम जी दोनों मिलकर पूर्णब्रह्म संज्ञा होती है । इसलिए प्रातः स्मरणीय गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने श्री रा० च० मा० की ना० व० के पूर्व ही लिखा है कि—गिरा अरथ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न । वन्दौं सीताराम पद जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥ वा०

का० दो० १८ ॥ अस्तु श्री युगल सरकार की परम कृपा चाहने वाले रसानुभूति के इच्छकों को श्रीसीतारामजी में से एक एक का ध्यान, पूजन, नाम जप अधिक उपयोगी नहीं होगा। वैसे महिमा की दृष्टिकोण से तो पूरे एक नाम की कौन कहे नाम भास से ही पाप ताप नाश हो जाते हैं। केवल रेफ मात्र से ही भुक्ति मुक्ति दोनों प्राप्त हो जाती हैं। तथापि भक्ति रसानुभव की दृष्टि से उपासकों को श्री सीताराम जी का एक साथ ध्यान पूजन स्मरण करना अधिक लाभकर है। भावात्मिका भक्तिके विभिन्न प्रकारके भावुक स्वरुचि प्रधान विभिन्न प्रकार की भावना करतेहैं। करना भी चाहिये, यथा,—वात्सल्य भावापन्न भक्त केवल श्री रामलाल जी का ही ध्यान करते हैं। और श्री मैथिली वात्सल्य विभोर भक्त श्री जानकी जी के ही वालरूप का ध्यान करते हैं। फिर भी यह विषमता नहीं है। मान्यथा में ऐक्यता का ही अनुसन्धान रहता है। इसलिये श्री सीतानाम या श्री राम नाम जप की अपेक्षा श्री सीतारामनाम का जप करना अधिक श्रेयकर होगा ॥ १ ॥ श्री सीता जी के बिना श्री राम भजन करता है। हेय समझकर श्री सीता जी का तिरस्कार करता है। अथवा श्री राम जी को हेय मान कर तिरस्कार करके केवल श्री सीता जी का ही भजन करता है। तो ऐसा करनेवाले दोनों प्रकार के व्यक्तियों में से किसी को भी अनन्त कल्पों तक भजन करने पर भी न तो श्री सीता जी की प्रसन्नता और न श्री राम जी की प्रसन्नता प्राप्त होती है। तात्पर्य यह है कि श्री सीताराम जी अभेदात्मा हैं। उनमें भेद बुद्धि न करके ऐक्यता का अनुसन्धान करते हुये एक साथ ही श्री सीताराम जी के नाम, रूप, लीला, धाम, गुणों की उपासना करनी चाहिये। तथापि स्वरुचि प्रधानता के कारण दोनों को अभिन्न मानते हुये, दोनों में सद्भाव रखकर किसी भी एक के नाम रूप, लीला, धाम, यश, गुणों की उपासना की जा सकती है। कुछ भी दोष नहीं होगा। दोष की कल्पना तव होगी जब एकके प्रति श्रद्धा और दूसरे के प्रति अश्रद्धा करेगा। यह स्वाभाविक वात है कि अपने प्रिय का स्मरण करने वाले पर सभी को प्रसन्नता होती है। तद्नुसार श्री सीता नाम का जप करने वाले पर श्री राम जी प्रसन्न होते हैं कि–यह हमारी प्राणप्रियाजू का नाम जपता है। और श्रीरामनामजापक पर श्री सीता जी प्रसन्न होती हैं कि यह हमारे परम प्रियतम जू का नाम जप रहा है। और श्री सीताराम नाम जापक पर एक ही साथ श्री सीताराम जी की प्रसन्नता होती है। इसलिये उपासकों को एक नाम की अपेक्षा श्री सीता एवं श्रीराम दोनों ही नाम एक साथ जपना अधिक श्रेयकर होगा। यद्यपि दोनों नामों के एक एक अक्षर में जीव को भक्ति मुक्ति देने की परम सामर्थ समाहित है।

स रामो न भवेज्जातु सीता यत्र न विद्यते । सीता नैव भवेत् सा हि यत्र रामो न विद्यते ॥ ३ ॥ सीतारामं विना नैव रामः सीतां विना नहि । श्रीसीता-रामयोरेव सम्बन्धः शाश्वतो मतः ॥ ४ ॥

वह श्री राम जी नहीं हैं, जहाँ श्री सीता जी न हों । और जहाँ श्री राम जी नहीं हैं, वह श्री सीता जी भी नहीं हैं । तात्पर्य यह है कि श्री सीताराम जी सर्वदा परम अभिन्न हैं । श्री सीता जी के बिना श्री राम जी की शोभा नहीं है । तथाहि श्री राम जी के बिना श्री सीता जी की शोभा नहीं है । श्री सीताराम जी की परस्पर में दोनों से ही दोनों की परम शोभा है । दूसरी बात यह भी है कि श्री राम जी सूर्य और श्री सीता जी प्रभा सदृश्य होने के कारण भी एक दूसरे से पृथक हो ही नहीं सकते । श्रीमद्वाल्मीकि रामायण श्री अयोध्या काण्ड में श्री सीता जी ने ही स्वयं कहा है कि—अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ॥ वा० रा० सु० का० सर्ग० २१ श्लोक १५ ॥

अर्थात् मैं राघव की इस प्रकार अनन्य हूँ कि जिस प्रकार सूर्य से किरण फिर श्रीराम च० मा० अयो० का० में भी लिखा है कि-प्रभाजाय कहँ भानु बिहाई । कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई ॥ इतने पर भी यदि कोई अपनी हठ से श्री सीता जी और श्री राम जी में भेद बुद्धि करेगा, तो उसे किसी भी प्रकार सम्मिलित पूर्ण पर-मानन्द का लाभ नहीं हो पायेगा । अस्तु श्री सीताराम जी में अभेद बुद्धि रख कर भजन करना ही उत्तम है ॥ ३ ॥ श्री सीता जी के बिना श्री राम नहीं । और श्री राम जी के बिना श्री सीता जी नहीं हैं । श्री सीताराम जी का पारस्परिक एकरस सम्बन्ध है । कभी भी विच्छेद नहीं होता है । इसलिये प्रेमी भावुकों को भी श्री सीताराम जी का एक साथ भजन, पूजन, स्मरण, कीर्तन आदि करना चाहिये ॥ ४ ॥

॥ श्री जानकी रत्नमाणिक्ये ॥ श्री सीतारामनाम प्रताप प्रकाश पृ० ५८ ॥

सीताविनाये सखि कोटिकल्पसमास्तु रामं जनकात्मजासु । ध्यायन्ति निद्याश्रयभागिनस्ते रामप्रसादाद्विमुखाः भवन्ति ॥ ५ ॥ रामस्तु वश्यो भवतीह सीताप्रोच्चारणाद् ये तु जपन्ति सीताम् । भूत्वानुगामी भजते जनस्तान् ब्रह्म-शशकार्चितराजपुत्रः ॥ ६ ॥

श्री सीतानाम बिना यदि कोई करोड़ों कल्पों तक श्री राम नाम कहे, तो भी

श्री राम जी प्रसन्न न हों। अपितु श्री सीता नाम को त्याग करने के कारण केवल श्रम, निन्दा एवं विमुखता का ही भागी बनता है। क्यों कि श्री सीता जी श्री राम जी की परमाह्लादिनी अभिन्न शक्ति और प्राणाधिक प्रिय हैं। अस्तु तिरस्कार पूर्वक हेय समझ कर श्री सीता नाम का त्याग करनेवाले पर श्री राम जी प्रसन्न कैसे हों। क्यों कि श्री जानकीस्तवराज में स्वयं श्री राम जी ने भगवान् श्री शंकर जी से कहा है कि—"तिष्ठामि न क्षणं शम्भो ! जीवनं परमं मम" अर्थात् हे शंकर जी मैं श्री जानकी के विना, एक क्षण भी सुख पूर्वक नहीं रह सकता। क्यों कि वह मेरी परम जीवन हैं। इसलिये श्री सीता नाम के प्रति अभाव अश्रद्धा करके केवल श्री रामनाम जापक पर श्री राम जी के हृदय में उत्साह पूर्वक वात्सल्य की बाढ़ नहीं आती। तथापि श्री राम नाम के प्रभाव से संसार सागर से पार तो हो ही जाता है इसमें संदेह नहीं॥ इसलिये श्री राम जी की कृपा और प्रसन्नता के इच्छकों को श्री सीता-राम नाम जपना ही अधिक श्रेयकर है। क्यों कि अहलाद तत्त्व तो श्री सीता जी ही हैं, उनके अभाव में श्री राम जी ही अह्लादित न होंगे, तब केवल श्री राम नाम जापक को कैसे अह्लाद प्राप्त होगा। हाँ यदि श्री सीता नाम में भी श्रद्धा भाव रख कर केवल श्रीराम नाम जप किया जाये, तो सर्वज्ञ प्रभु रीझ सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। तथापि प्रेमाभक्ति रसानुभव की कामना वाले भक्तोंको तो श्रीसीतारामनाम ही जपना चाहिये ॥५॥ केवल सी अक्षर उच्चारणमात्र से ही श्री राम जी वश हो जाते हैं। और यदि कोई प्रेम पूर्वक श्री सीतानाम का जप करे, तो श्री राम जी उसके पीछे पीछे फिरते हैं। इस प्रकार श्री सीता जी में श्री राम जी का प्रेम है, वैसे तो श्री राम जी सभी देवताओं से तथा देवेन्द्र, ब्रह्मा, शंकरादिकों से भी पूज्यनीय हैं, चराचर जगत श्री राम जी का अर्चन करता है। इसी प्रकार श्री राम जी के नाम को श्रवण करके श्री सीता जी को परमानन्द प्राप्त होता है, इसलिये केवल श्रीसीता नाम जपना भी पूर्ण लाभकर नहीं है, अस्तु श्री सीताराम जी की कृपा चाहने वालों को श्री सीताराम नाम जपना ही सर्वोत्तम है। वैसे संसार सागर से पार तो किसी भी नाम का आश्रयण करने पर होने में सन्देह नहीं है। तथापि सम्यक् प्रकार रसा-नुभव प्रद श्री सीताराम नाम ही है ॥६॥ ब्रह्मरामायणे श्रीराम वाक्यं श्री जानकीं प्रति पृ० ६६ से

श्री सीतारामनामनस्तु सदैक्यं नास्ति संशयम । इति ज्ञात्वा जपेद्यस्तु स धन्यो भाविनां वरः ॥ ७ ॥ एकं शास्त्रं गीयते यत्र सीता कर्माप्येकंपूज्यते यत्र सीता। एका लोके देवता चापि सीता मन्त्रश्चैको ऽप्यस्तिसीतेति नाम ॥ ८ ॥

श्री सीताराम नाम दोनों एक हैं, इसमें भेद नहीं। जो ऐसा जानते हैं वही भावकों में श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥ वही प्रधान शास्त्र है, जिसमें श्री सीता जी का नाम परत्त्व प्रकाशित हो। और श्रीसीताजी की पूजा करना जीव मात्र का मुख्य कर्म है। निश्चय ही लोक में श्री सीता जी ही सर्वोपरि देवता हैं। तथा श्री सीतानाम ही सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है ॥ ८ ॥

ज्ञानं सीतानाम तुल्यं न किञ्चित्, ध्यानं सीता नाम तुल्यं न किञ्चित् ।
भक्तिः सीतानाम तुल्यं न काचित्, तत्त्वं सीता नाम तुल्यं न किञ्चित् ॥ ६ ॥
नान्यः पन्था विद्यते चात्मलब्धौ, नान्यो भावो विद्यते चापि लोके ।
नान्यद् ज्ञानं विद्यते चापि वेदेष्वेवं सीतानाम मात्रं विहाय ॥ १० ॥

श्री सीतानाम के समान न कोई ज्ञान है, और न श्री सीतानाम के समान कोई ध्यान ही है, श्री सीतानाम के समान कोई भक्ति भी नहीं है, तथा श्री सीता नाम के समान कोई तत्त्व भी नहीं है। श्रद्धा प्रेम पूर्वक जो व्यक्ति श्री सीतानाम का जप करता है, तो निश्चय ही जानो कि उसको सभी प्रकार का उत्तम ज्ञान है। और उसका ध्यान भी श्रेष्ठ है, तथा सर्वाङ्ग पूर्ण भक्ति भी उसमें है। और उसने वेद के तत्त्वों को ठीक से समझा है। यदि वेद शास्त्रों का ज्ञान, ध्यान, भक्ति, सभी तत्त्वों को पाकर भी श्री सीतानाम में प्रेम न हुआ तो इनकी विशेष महिमा नहीं है ॥ ६ ॥ आत्मलाभ अर्थात आत्मसाक्षात करने के लिये तथा परमात्मा का दर्शन करने के लिये श्री सीतानाम को छोड़ कर न तो कोई ऐसा सुलभ और सुगम मार्ग है न ऐसा कोई भाव ही है और वेदों में ऐसा कोई सुगम ज्ञान भी नहीं है। अस्तु बुद्धिमानों को सर्वदा श्री सीतानाम जपना चाहिये ॥ १० ॥

राम रामेति रामेति रामेति च पुनर्जन् । स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः ॥ २१ ॥ पद्म० पु० चतुर्थोखण्ड एक सप्ततितमोऽध्यायः ॥ और स्कन्ध पु० तृतीयखण्ड चतुर्विंशोऽध्यायः श्लोक ३६ से ५३ तक ॥ विप्रभक्त्या च दानेन विष्णुध्यायेन सिद्धति । तासांमन्त्रो रामनामध्येयः कोट्याधिको भवेत् ॥ ३६ ॥ रामेति द्वयक्षर जपः सर्वपापनोदकः । गच्छंस्तिष्ठञ्छयानो वा मनुजो रामकीर्त्तनात् ॥ ४० ॥ इहनिर्वृत्ति मायाति प्रान्तेहरिगणो भवेत् । रामेति द्वय-

क्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशतोधिकः ॥ ४१ ॥ सर्वासां प्रकृतीनां च कथितः पापनाशकः । चातुर्मास्येऽथ सम्प्राप्ते सोप्यनन्त फलप्रदः ॥ ४२ ॥ चातुर्मास्ये महापुण्ये जप्यते भक्ति तत्परैः । देवविनिष्फलं तेषां यमलोकस्य सेवनम् ॥ ४३ ॥ न रामाधिकं किञ्चित्पठनं जगतीतले । रामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना ॥४४॥ ये च दोषा विघ्नकरा मृतका विग्रहाश्रये । रामनाम्नैव विलयंयान्ति नात्र विचारणा ॥ ४५ ॥ रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च । अन्तरात्मा स्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥ ४६ ॥ रामेति मन्त्रराजोऽयं भय व्याधि विघूषकः । रणे विजयदश्चापि सर्वकार्यार्थ साधकः ॥ ४७ ॥ सर्वतीर्थ फलप्रोक्तो विप्राणामपि कामदः । रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः ॥ ४८ ॥ द्वयक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्य करो भुवि । देवाअपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम् ॥ ४९ ॥ तस्मात्त्वमपि देवेशि रामनाम सदावद । रामनाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्व किल्बिषैः ॥ ५० ॥ सहस्र नामजं पुण्यं रामनाम्नैव जायते । चतुर्मास्ये विशेषेण तत्पुण्यं दशधोत्तरम ॥ ५१ ॥ हीनजाति प्रजातानां मुहद्याति पातकम् ॥ ५२ ॥ रामोऽवविश्वमिदं समग्रं स्वतेजसा व्याप्य जनान्तरात्मना । पुनाति जन्मान्तर पातकानि स्थूलानि सूक्ष्माणि क्षणाच्च दग्ध्वा ॥ ५३ ॥ पुनः पद्मपु० एकसप्तति तमोऽध्यायः उत्तरखण्डे ३३३ श्लोकः द्रष्टव्यः ॥ राम रामेति रामेति रमे राम मनोरमे । सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥

अर्थ—श्री ब्रह्मा जी ने नारद जी से कहा कि—हे वत्स ! बारबार राम ऐसा जपने से चाण्डाल भी पवित्रात्मा हो जाता है । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ २१॥ ब्राह्मणों की भक्ति करने से अनेक प्रकार के दान देने से भगवान् विष्णु के ध्यान करने से जो सिद्धि प्राप्त होती है, उससे भी करोड़गुणा फलप्रद सभी का परमध्येय मन्त्र श्री रामनाम है ॥ ३९ ॥ राम+इति=राम ऐसा यह दो अक्षर वाला मन्त्र का जप सब पापों को नाश करने वाला है । इस रामनाम को चलते, बैठते, अथवा सोते हुये भी जो मनुष्य कीर्त्तन (जप स्मरण) करता है ॥ ४० ॥ तो वह त्रिगुणमयि मायारचित इस संसार सागर से मोक्ष (पार होकर) प्राप्तकर भगवद्धाम में श्रीराम जी का पार्षद हो जाता है । यह दो अक्षर वाला श्रीराम मन्त्र सौ करोड़ (अनन्त)

मन्त्रों से अधिक महत्त्व वाला है ॥ ४१ ॥ मैंने यह समस्त प्राकृतिक जनों के लिये पापनाश करने का उपाय कहा है। चातुर्मास (वर्षाकाल) में इसका जप करने से अनन्त फल होता है ॥ ४२ ॥ परम पवित्र चातुर्मास के समय में भगवद्भक्ति में तत्पर भक्तोंको इस श्रीरामनाम का जप अवश्य ही करना चाहिये। देवताओं का फल स्वर्ग पुण्यक्षीण होने पर जैसे नष्ट हो जाता है, क्षीणे पुण्ये मृत्युलोके विशन्ति ॥ ॥ गीता ॥ उसी प्रकार श्री रामनाम जापक का यमलोक जाना बन्द हो जाता है ॥ ॥ ४३ ॥ इस जगत में श्री रामनाम से अधिक कुछ भी पढ़ने योग्य नहीं है। अर्थात वेद पुराण शास्त्र इतिहास काव्य छन्द व्याकरण जोतिष न्याय मीमांसा इत्यादि सब कुछ पढ़ने पर भी श्री रामनाम जप बिना किये, विद्या का वास्तविक फल भगवत्प्राप्ति होना असम्भव है। और कुछभी न पढ़नेवाला व्यक्ति यदि श्री रामनामका जप श्रद्धा भक्ति से हो तो निश्चय ही संसार से मुक्त होकर अनायास भगवत्प्राप्ति हो जायेगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि पढ़ना लिखना नहीं चाहिये। विद्या पढ़ने से श्रीरामनाम की महिमा का ज्ञान होता है। तब श्री रामनाम में अभिरुचि जाग्रत होकर साधक को श्री राम परायण बना देती है। श्री रामनाम जपनेवाले पर यमराज का शासन नहीं होता है। उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार भगवत्पार्षद करते हैं ॥ ४४ ॥ विघ्न करने वाले जितने दोष और मृतक विग्रह (मरे हुये व्यक्ति) हैं वे सब श्री रामनाम में ही विलीन हो जाते हैं। इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। तात्पर्य यह है कि समस्त जगत श्री रामनाम से उत्पन्न होकर पुनः कालान्तर में श्री रामनाम में ही विलीन हो जाता है ॥ ४५ ॥ अन्तरआत्मा स्वरूप से जो जड़चेतनात्मक सभी प्राणियों में रमण करता है, उसको राम कहते हैं ॥ ४६ ॥ राम यह दो अक्षरवाला मन्त्रराज समस्त भय व्याधियों को नाश करने वाला अर्थात मृत्यु का महानभय और बारम्बार जन्म लेनेवाली महान व्याधि को नष्ट करके श्री रामकिंकर (श्रीरामपार्षद) बना देता है। श्री रामनाम का स्मरण युद्धस्थल में विजय और सभी कार्यों को सिद्ध करनेवाला है ॥ ४७ ॥ श्रीरामचन्द्रइति श्रीराम इति अर्थात् बारम्बार श्री रामनाम का उच्चारण करने से सब तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त होता है। श्री रामनाम ब्राह्मणों के भी सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है ॥४८॥ दो अक्षर वाला राम यह मन्त्रराज भूमण्डल में सबके सब मनोरथों को सिद्ध करने वाला है। समस्तगुणों की खानि श्री रामनाम का कीर्त्तन देवता भी करते हैं ॥४९॥ शंकर जी ने कहा, इसलिये देवेशि (हे पार्वति) तुम भी सर्वदा श्री रामनाम का कीर्त्तन किया करो। जो श्री रामनाम का जप करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो

हो जाता है ॥ ५० ॥ भगवान् के हजार नाम जपने का पुण्य श्री रामनाम एकबार कहने से हो जाता है । यद्यपि श्री रामनाम सर्वदा सर्व फल प्रद है, तथापि चातुर्मास में अन्य समय की अपेक्षा दशगुणा पुण्यप्रद है ॥ ५१ ॥ न्युनवर्ग के व्यक्ति से भी महान से महान पाप हो जाने पर श्री रामनाम जपने पर सभी पाप जल जाते हैं ॥ ५२ ॥ अपने तेज से इस समस्त संसार को व्याप्त करने वाले श्री राम जी, अपने आश्रित भक्तों के अनेक जन्मों के स्थूल सूक्ष्म (छोटे बड़े) सभी पापों को क्षणभर में मलाकर पवित्र कर देते हैं ॥ ५३ ॥ भूतमनभावन भगवान् श्री शिव जी ने श्री पार्वती जी से कहा कि—हे मनोरमे पार्वति ! अपने अन्तरात्मा में श्री राम जी के साथ में रमण करते हुये, श्री रामनाम का जप स्मरण कीर्त्तन करने से हे सुमुखि ! भगवान् के हजार नामों के समान महत्त्व होता है । अर्थात् श्री राम जी में मनचित लगाकर श्री रामनाम का जप स्मरण कीर्त्तन करना सर्वश्रेष्ठ साधन है ॥ ३३३ ॥ उपर्युक्त श्लोकों में २१ और ३३३ नं० के श्लोक पद्म पु० उ० ख० ६ अ० ७१ के मनसुखराम मोर कलकत्ता वालों के द्वारा प्रकाशित पुस्तक के पृ० २४४ तथा पृ० के हैं । और ३६ से ५३ तक के श्लोक भी मनसुखराम द्वारा प्रकाशित स्कन्द पुराण तृतीय खं० अ० २४ के पृ० ५३६ के हैं ॥ अब वाराहपुराण में भगवान् शंकर जी श्री पार्वती जी से कहते हैं कि—

दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो। हारामेण हतोऽस्मि भूमिपतितो जल्पन्स्तनुं त्यक्तवान् । तीर्णोगोष्पदवद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावादहो किं चित्रं यदि रामनाम रसिकास्ते यान्ति रामास्पदम् ॥ १७६ ॥ और नरसिंह पुराण में श्री प्रहलाद जी ने अपने पिता से कहा है कि—रामनामजपतां कुतोभयं सर्वतापशमनैकभेषजम् । पश्यतात ममगात्र संगतः पावकोऽपिसलिलायतेऽधुना ॥११॥ और स्कन्दपु० काशीखण्ड में श्री शिववाक्य हैं कि—पेयं पेय श्रवणपुटके रामनामाभिरामं ध्येय ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम् । जल्पन्जल्पन्प्रकृति विकृतौ प्राणिनां कर्णमूले वीथ्यां वीथ्यामटतिजटिलः कोऽपि काशीनिवासी ॥ और पुलह संहिता में कहा है कि—सावित्री ब्रह्मणासार्द्धं लक्ष्मीनारायणेन च । शम्भुना रामरामेति पार्वति जपति स्फुटम् ॥ उपर्युक्त चारो श्लोक श्री सीतारामनाम प्रताप प्रकाश ग्रन्थ के क्रमशः पृष्ट नं० २०, २३, ४१ एवं ४६ से उद्धृत किये गये हैं ।

अर्थ—बाराहपुराण में बताया है कि—एक महापापी म्लेच्छ बैल का व्यापार करते हुये किसी वन में रुक गया। वह शरीर से बहुत ही जर्जर और रोगी था। रात्रि में शौचक्रिया करने गया, प्रारब्धवश सूकर (शूकर) के बच्चे ने उसे धक्का देकर ढकेल दिया। वह पुकारकर ऐसा कहते हुये गिर पड़ा कि हमें हराम ने मारा हराम ने मारा और तुरन्त मर गया। उसके हराम शब्द में राम शब्द निकला, जिस रामनाम के प्रभाव से उसके समस्त पाप नष्ट हो गये, और वह गोखुर के समान अनायास संसार सागर से पार हो गया। तब जो श्री रामनाम जपके परम रसिक हैं वह यदि श्रीराम धाम को प्राप्त हो जायें तो क्या आश्चर्य है ॥ १७६ ॥ नरसिंह पुराण में श्री प्रह्लाद जी ने हिरण्यकश्यप से कहा है कि—श्री रामनाम जपनेवाले को कहीं भी भय नहीं है क्योंकि श्रीरामनाम सभी तापों को शमन करने की औषधि [दवाई] है। आप प्रत्यक्ष ही देखिये कि इतनी प्रचंड अग्नि भी मेरे शरीर का स्पर्श पाते ही शीतल हो गई है ॥ ११ ॥ काशीखण्ड में लिखा है कि—भगवान् श्री शंकर जी जटामुकुट धारण करके काशी की गलियों में घूमते हुये ऐसा कहते हैं कि—हे नगरनिवासियों ! आप सब कानरूपी दोनों से श्री रामनामरूपी परमपीयूष [परम अमृत] पान करो। और मन में परम तारक श्री रामनाम परंब्रह्म का ध्यान करो ॥ २५७ ॥ पुलह संहिता में बताता गया है कि—सावित्री जी के साथ ब्रह्मा जी लक्ष्मी जी के साथ भगवान् नारायण और पार्वती जी के साथ भगवान् शंकर जी नित्य श्री रामनाम का जप करते हैं। इन्हीं श्लोकों के अनुरूप पूज्य चरण गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने कवितावली में लिखा है कि-आँधरो अधमजड़ जाँजरो जरा जवन शूकरकेशावक ढका ढकेल्यो मग में। गिरो हियेहहरि हराम हो हराम हन्यो, हाय ! हाय ! करत परीगो कालफग में ॥ तुलसी विशोक ह्वै त्रिलोकपति लोकगयो, नामकेप्रताप बातविदित है जग में। सोई रामनाम जो सनेह सों जपतजन, ताकी महिमा क्यों कही है जाति अगमें ॥ पद नं० ७६ ॥ श्रीराम च० मा० में बताया है कि—जासुनामबल शंकर काशी। देतसबहिं समगति अबिनासी ॥ श्री शंकर जी ने स्वयं भी कहा है कि—काशीमरत जन्तुअवलोकी। जासुनामबल करौं विशोकी ॥ सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुवर सब उर अन्तरयामी ॥ जिन प्रभु के नाम के सादर जपकी तो महिमा कह ही कौन सकता है। जब कि—बिबसहुं जासुनाम नर कहहीं। जन्म अनेक रचित अघदहहीं ॥ सादर सुमिरन जो नर करहीं। भववारिधि गोपद इव तरहीं ॥ बा० का० ११९ दो० ॥ पुनः पंचसर्गीय श्रीमन्महारामायणान्तरगत पृ० ७५ से ८१ तक श्लोक ३४ से ३७ तक में लिखा है कि—

रामनाम्नःसमुत्पन्नः प्रणवो मोक्षदायकः । रूपंतत्वमसेश्चासौ वेदतत्त्वाधि-कारिणः ॥ ३४ ॥ अकारः प्रणवेसत्त्व मुकारश्च रजोगुणः । तमोहलमकारस्स्यात् त्रयोऽहङ्कारमुच्यतः ॥ ३५ ॥ प्रिये भगवतोरूपे त्रिविधो जायतेऽपि च । विष्णुर्विधिहरश्चैव त्रयोगुण विधारिणः ॥ ३६ ॥ चराचरसमुत्पन्नो गुणत्रयविभागतः । अतः प्रिये रमुक्रीडा रामनाम्नैव वर्तते ॥ ३७ ॥

अर्थ -मोक्षफल रूप को देनेवाला जो प्रणव (ओंकार) है वह श्रीरामनाम से उत्पन्न हुआ है । और वेदतत्त्व के अधिकारी लोग इस श्रीरामशब्द को तत्त्वमसि का भी कारण मानते हैं । अर्थात् तत्त्वमसि शब्द भी श्री रामनाम से सिद्ध होता है ॥ ३४ ॥ अब श्री रामनाम से उत्पन्न महातत्त्व प्रणव के तीनों वर्णों को त्रिगुण-मय दिखाते हैं यथा—प्रकृति का कार्य महातत्त्व त्रिविध अहंकारमय है । सो प्रणव के प्रथमवर्ण अकार सत्त्वगुणमयहै, द्वितीयवर्ण उकार रजोगुणमय है, तृतीय हलमकार प्रणव के तमोगुणमय है । जैसे प्रकृति कार्य महत्तत्त्व से सात्त्विक राजस तामस त्रिविध अहंकार उत्पन्न होता है । वैसे ही श्री रामनाम का कार्य प्रणव वर्णत्रयगुण मय है ॥ ३५ ॥ श्री शिव जी ने कहा कि हे प्रिये पार्वति ! षडैश्वर सम्पन्न भगवान् श्री राम जी के रूप से ब्रह्मा विष्णु महेश तीन रूप जायमान (उत्पन्न) होते हैं । यथा—ब्रह्मा का रूप रजोगुणमय है, विष्णुरूप सत्त्वगुणमय और श्री शिव जी का तमोगुण रूप है । यथा—शम्भु विरंचि विष्णु भगवाना । उपजहिं जासु अंश ते नाना ॥ रा० च० मा० बा० कां० १४४ दो० ३६ ॥ हेप्रिये पार्वति ! जड़चेतनमिश्रित ब्रह्माण्ड सत रज तम इन गुणत्रय के विभाग से उत्पन्न हुआ है । अतएव रमुक्रीड़ा धातु से श्री रामनाम का ही सर्वत्र रमणत्व सिद्ध है ॥ ३७ ॥ पृ० ८१ में ३६-४० को देखिये । यथा—

इत्यादयो महामन्त्रा वर्तते सप्तकोटयः । आत्मातेषां च सर्वेषां राम-नाम्ना प्रकाशते ॥ ३९ ॥ नारायणादि नामानि कीर्तितानि वहून्यपि । तस्यगभ गवतस्तेषु रामनाम प्रकाशकः ॥ ४० ॥ और पृ० ८५ में नारायणो रकारः स्यादकारोनिर्गुणात्मकः । मकारोभक्तिरूपः स्यान्महाह्लादाभिधायिनि ॥ ५१ ॥ पृ० ८६ में-वेदसारं महावाक्यं मत्तत्त्वमसिकथ्यते । रामनाम्नश्च सत्सर्वं रमुक्री-

हा प्रवर्तते ॥ ४६ ॥ पृ० ८८ में-रकारोऽनलबीजंस्यात् ये सर्वे वाडवादयः । कृत्वा मनोमलसर्वं भस्मकर्मं शुभाशुभम् ॥ ६२ अकारोभानुबीजं स्याद् वेदशा-स्त्रप्रकाशकः । नाशयत्येव सद्दीप्त्या विद्यतेहृद्येतमः ॥ ६३ ॥ मकारं चन्द्रबीजं च सदम्बुपरिपूरणम् । त्रितापं हरते नित्यं शीतलत्व करोति च ॥ ६४ ॥ पृ० ८९ ॥ रकारो हेतु वैराग्यं परमं यच्च कथ्यते । अकारो ज्ञानहेतुश्च मकारो भक्ति हेतुकः ॥ ६५ ॥

अर्थ—प्रणव आदि सात करोड़ महामन्त्र हैं । उन सबकी आत्म स्वरूप और उन सबका परम प्रकाशक श्रीरामनाम है ॥ ३९ ॥ भगवान् के नारायण आदि बहुत से नामों का कथन किया गया है । किन्तु उन सम्पूर्ण नामों का प्रकाशक श्री रामनाम है ॥ ४० ॥ श्रीराम शब्द में जो रेफ है, वह नारायण रूप को अभिधान करता है । और मध्यवर्त्ती आकारनिर्गुण ब्रह्म के स्वरूप है और परम आह्लाद देने वाली भक्ति का स्वरूप मकार है ॥ ५१ ॥ वेदकासार स्वरूप तत्त्वमसि महावाक्य कहा जाता है, वह महावाक्य श्री रामनाम में गतार्थ है । अर्थात श्री रामनाम से सिद्ध होता है । अतएव रमु यह धातु क्रीड़ार्थ में वर्तता है ॥ ५६ ॥ बड़वाग्नि जठ-राग्नि आदिक जितनी भी अग्नि जगत में हैं ॥ उन सबका कारण रेफ है । अग्नि बीज रेफ जापक के सम्पूर्ण मनोमल और शुभाशुभ कर्म को जलाकर भस्मसात कर देता है ॥ ६२ ॥ अकार सूर्य का कारण और वेदशास्त्र का प्रकाशक है । और भानु-बीज अकार अपने प्रकाश से जापक भक्त के मन में प्रविष्ट अविद्या से उत्पन्न अज्ञान अन्धकार को नाश करता है ॥ ६३ ॥ अमृत से परिपूर्ण चन्द्रबीज मकार जापक भक्तों के, दैविक, भौतिक, अध्यात्मिक तीनों तापों को नष्ट करके शीतलता प्रदान करता है ॥ अर्थात जीव के स्वरूपगत जो दिव्य अष्टगुण हैं, उनको प्रगट करता है ॥ ६४ ॥ तीनों गुणों के त्याग को वैराग्य कहा जाता है । उस वैराग्य का कारण श्रीराम शब्द गतरेफ है । और ज्ञान का कारण अकार है । और भक्ति का कारण मकार को जानना चाहिये ॥ ६५ ॥

रकारो योगिनांध्येयो गच्छन्ति परमं पदम् । अकारो ज्ञानिनां ध्येयस्ते सर्वे मोक्षरूपिणः ॥ ६६ ॥ पूर्णनाम मुदादासाध्यायन्त्यचल मानसा ।प्राप्नुवन्ति

परांभक्ति श्रीरामस्य समीपताम् ॥ ७० ॥ अन्तर्जपन्ति ये नाम जीवनमुक्ता-भवन्तिते । तेषां न जायते भक्तिर्न च राम समीपकः ॥ ७१ ॥ जिह्वयाप्यन्तरेणैव रामनाम जपन्तिये तेषां चैव पराभक्तिर्नित्यंराम समीपकाः ॥ ७२ ॥ योगिनो भक्ताः सुकर्म निरताश्च ये । रामनाम्नि रताः रमुक्रीडात एव वै ॥ ७३ ॥कवीनां च यथानन्तो भक्तानामञ्जनांसुतः । शक्तीनां यथा सीता रामो भगवता मपि ॥ ७६ ॥ कोटि ज्ञानैश्च बिज्ञानं कोटिध्यानं समाधिभिः । सत्यं वदामि तेस्तुल्यं रामनाम प्रवर्त्तते ॥ १०४ ॥ सर्वेन्द्रिय जितो भूत्वा पूतोबाह्यान्तरस्तथा । इत्थंनाम जपेनित्यं रामरूपोभवेन्नरः ॥ १०७ ।

उपर्युक्त श्लोक ३४ से १०७ तक श्रीमन्महारामायण में उमामहेश्वरसंवादमें ५२ सर्ग के हैं ॥ अर्थ—श्री रामशब्द में जो रेफ हे, सो योगियों के ध्यान का लक्ष्य है । जिस लक्ष्य में मनको एकाग्र करके भगवद्धाम को जाते हैं । और आकार ज्ञानियों का ध्येय है । जिस ध्येय के प्रभाव से वे सब ज्ञानी जीवनमुक्त हो जाते हैं ॥ ६६ ॥ दासरस निष्ठ महात्मावृन्द आनन्द के सहित अचलमनसे पूर्ण रामनाम को ध्यान करते हैं । अतएव उन दासभाव निष्ठों को श्रीराम समीप कारिणी परांभक्ति प्राप्ति होती है ॥ ७० ॥ जो व्यक्ति वैखरी परा पश्यन्ति आदि वाणी का अवलम्ब न लेकर अन्तरनिष्ठ होकर श्री रामनाम जपते हैं । सो जीवनमुक्ति को प्राप्त होते हैं, किन्तु उनको श्रीराम समीप कारिणी पराभक्ति नहीं मिलती है ॥ ७१ ॥ हृदय में अनुराग सहित जिह्वा से श्री रामनाम जपने वालों को नित्य भगवत् समीपता प्रदान करने-वाली पराभक्ति प्राप्त होती है ॥ ७२ ॥ योगी, ज्ञानी, भक्ततथा कर्मकाण्डी यह चारों साधक श्री रामनाम रत रहते हैं । अतएव रामनाम से निष्पन्न रमुक्रीडा कहा जाता है ॥ ७३ ॥ जिस प्रकार सभी कवियों में भगवान् शेष जी और भक्तों में श्री हनुमान जी शक्तियों में श्री सीता जी और अवतारों के वीच में भगवान् श्री राम जी प्रधान हैं । उसी प्रकार सभी मन्त्रों में श्री रामनाम प्रधान है ॥ ७६ ॥ तीर्थ, दान, योग, व्रत, यज्ञ, जप, तप और अनेक प्रकार का ज्ञान समाधि सहित विज्ञान इन सवके कोटान कोटि सदृश श्री रामनाम है, शिव जी कहते हैं कि मैं यह सत्य कहता हूँ ॥ सव इन्द्रियों को जीतकर भीतर वाहर से शुद्ध होते हुये जो नित्य श्री रामनाम को जपते हैं, वे श्री राम जी की सारूप्य मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥ १०७ ॥ श्री हनुमान्ना-टक का प्रथम श्लोक है कि—

कल्याणानांनिधानं कलिमलमथनं पावनंपावनानां; पाथेयंयन्मुमुक्षोस्सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य । विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनंसज्जनानां, बीजंधर्मद्रुमस्य प्रभवतुभवतां भूतयेरामनाम ॥ १ ॥

अर्थ—श्री रामनाम समस्त कल्याणों का दिव्य निवास स्थान है । अर्थात् श्री रामनाम जपने से सभी प्रकार के कल्याण प्राप्त होते हैं । ज्ञान वैराग्य आदि सभी साधन अपने साध्य समेत श्री रामनाम से ही प्राप्त होते हैं । और कलियुग के सभी पाप ताप को नाश कनने वाले हैं । पुनः श्री गंगादिक पावन तीर्थों को भी परमपावन करनेवाले हैं । और मुक्तिस्वरूप परमधाम (भगवद्धाम) प्राप्त करने की इच्छा करनेवालों को शीघ्र ही भभवद्धाम प्राप्तिके लिये परमपुष्ट मार्गव्यय हैं । श्रीवाल्मीक जी इत्यादि कवि और सभी प्रवक्ताओं के श्रेष्ठ वचनों को एकमात्र विश्राम देनेवाले विशदस्थान श्री रामनाम ही हैं । और श्री रामनाम सज्जनों के परमजीवन है । पुनः श्री रामनाम सामान्य एवं विशेष समस्त धर्मों के बीज हैं । सादर सप्रेम श्री रामनाम जप करने से निश्चय ही श्री राम जी की प्राप्ति होती है ॥ स्वामी श्री रामनारायणदास जी शास्त्री द्वारा प्रकाशित श्री रामनाम महिमा नामक पुस्तक के संग्रहीत प्रमाण ॥ पृ० ६ से प्रारम्भ ॥

ततोऽसौ लब्धतारुण्यः शुकोगणिकयातदा । रामेति सततंनाम पाठ्यते सुन्दरस्वरम् ॥ रामनामपरंब्रह्म सर्वदेवाधिकं महत् । समस्तपातकध्वंसि स शुकास्तु सदापठन् ॥ रामोच्चारणमात्रेण तयोश्च शुकवेश्ययोः । विनष्टमभवत्पापं सर्वमेव सुदारुणम् ॥ (पद्मपुराणे क्रिया योगसारखण्डे अ० १५ श्लोक २७–३०) पृ० ११ में—मधुरमधुरमेतन्मंगलं मंगलानां । सकलनिगमवल्ली सत्फलं चित्स्वरूपम् । सकृदपि परिगीतं श्रद्धयाहेलया वा भृगुवर ! नरमात्रं तारयेद् रामनाम॥ (वृहद्नारदीयपुराणे प्रभासखण्डे) पृ० १४ से—ब्रह्माविष्णुमहेशाद्याः यस्यांशाल्लोक साधकः । तमादि देवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजे ॥ (स्कन्दपुराणे) पृ० १५—रामेति द्व्यक्षरं मन्त्रं मरणे यदिसंस्मरेत् । नरो न लिप्यतेपापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ (वृहद्ब्रह्मसंहितायाम्) पृ० २५—नाम्ना सहस्रं दिव्यानां स्मरणे यत्फलं भवेत् । तत्फलं लभतेनूनं रामोच्चारणमात्रतः ॥ [ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्मखण्ड अ० १११ के श्लोक १८–२१]

अर्थ—गणिका के द्वारा वह तोता तारुण्यता को प्राप्त हुआ। निरन्तर सुन्दर अक्षर श्री रामनाम पढ़ने लगा। रामनाम ब्रह्म है, सम्पूर्ण देवों से अधिक प्रभावशाली है। इसका रटन करने मात्रसे उन दोनों शुक और वेश्या के संपूर्ण दारुण पाप नष्ट हो गये। १८॥ यह मधुर मधुर श्री रामनाम संपूर्ण मंगलों को देनेवाला, अमंगलों का नाशक, मकान के स्तम्भ सदृश्य वेदों का रामनाम स्तम्भ है। सत्‌चित्‌ आनन्द स्वरूप का जो दर्शन है, वही भक्तिरूप उत्तम फल है। भृगुवर! जो कोई श्रद्धा से अथवा अश्रद्धा से एकवार भी श्री रामनाम का उच्चारण करता है। वह मनुष्यमात्र को भवसागर से पार कर देता है॥ ३१॥ ब्रह्मा विष्णु महेश आदि सम्पूर्ण लोक साधक (उत्पन्न) हुये हैं, उन परमविशुद्ध आदिदेव श्री राम जी को मैं भजता हूँ॥ ४१॥ यदि मनुष्य मरते समय श्रीराम दो अक्षर का स्मरण करता है, तो वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। जैसे कमल का पत्ता पानी से अलग रहता है॥ ॥ ४५॥ हजारों दिव्यनामों के स्मरण करने से जो फल मिलता है, निश्चय ही 'रामशब्द' के उच्चारण मात्र से वही फल प्राप्त होता है। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुक्त होई श्रुतिगावा॥ अर० कां० ३१ दो०॥ वारकराम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥ अयो० कां० २१७॥ नामलेत भवसिन्धु सुखाहीं। करहु विचार सुजन मनमाहीं॥ अन्य साधारण मनुष्यों की तो वात ही क्या? श्री रामनाम के ही प्रभाव से शंकर जी स्वयं अविनासी पद पाये और काशी में मरने वालों को मुक्ति देते हैं॥ नाम प्रसाद शम्भु अविनासी। साज अमंगल मंगलरासी॥ वा० कां० नाम वन्दना २६ दो०॥ जासुनाम वल शंकर काशी। देत सबहिं समगति अविनासी॥ किष्किन्धा कां० १० दो०॥

॥ श्रीसीताशरणंमम श्रीरामः शरणंमम ॥

श्रीसीताराम रूपमाधुरी

रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति शेषा

ले०—सुरेन्द्रकुमार "शिष्य" एम० ए० एम० एड साहित्यरत्न"

रामस्य नाम रूपं च लीलाधाम परात्परम् ।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥

वशिष्ट संहिता के इस निरूपण के अनुसार भगवान श्री सीताराम जी के नाम रूप लीला धाम चारों सच्चिदानन्दमय हैं । इन चारों में से किसी एक का भी आश्रय ग्रहण करनेवाला जीवात्मा आनन्दसाम्राज्य का अधिष्ठाता (अधिकारी) बन जाता है । इन चारों का आश्रयण कर्ता तो श्रीरामजीका स्वरूप ही हो जाता है । इतना अवश्य ही हो सकता है कि नाम लीला और धाम का प्रभाव असुर स्वभाव वाले प्राणियों पर तत्काल दृष्टिगोचर न होकर कालान्तर में अपना प्रभाव प्रगट करे । किन्तु रूप में कुछ ऐसी विशेष जादू है कि वह क्षणमात्र का भी विलम्ब न करके तत्काल ही दृष्टा के शिर पर चढ़कर सर्वथा अपने विवश करके अपनी कीर्ति के निर्मलगीत गवाने लगता है । रूपके ऐसे चमत्कारिक प्रभाव ने ही नाम लीला धाम को अछूता नहीं रहने दिया । उन तीनों पर अपने स्वरूप की छाप छोड़ दी । ज्ञानगम्य वेदान्तवेद्य योगीन्द्रमानसविहारी परम-प्रभु के महिमामण्डित नामों की शृंखला में "चितचोर" नाम उनके अखिलब्रह्माण्ड के नायकत्व को विडम्बना सी करता प्रतीत होता है । पर वह रूपकाभूप "विश्वविलोचनचोर" बनकर ही शोभायमान होता है । तो भक्त उसे "चौराग्रगण्य पुरुषं नमामि" कहकर सम्बोधित क्यों न करें ? रूपके विना लीला की कल्पना ही अनुमान से परे की बात है । प्रत्युत रूपके प्रतिष्ठित होते ही उसी क्षण कुछ न कुछ लीला अनायास ही प्रारम्भ हो जाती है । और धाम तो रूपके भूप के साथ ही साथ सर्वत्र रहता है । यथा—"अवध तहाँ जहँ राम निवासू" । तात्पर्य यह है कि रूपने नाम लीला धाम तीनों पर अपना प्रभाव जमा लिया है । यह सुनकर कोई 'ज्ञानमानविमत्त" बोल उठा कि जहाँ तक रूपकी कल्पना है, वह सब माया संवलित उपाधिमात्र है । परमतत्त्व नहीं हो सकता । किन्तु बात ऐसी नहीं है । वास्तविकता यह है कि भगवद्विग्रह में देही देह विभाग नहीं होता है । अर्थात् शरीर और आत्मा की भिन्नता का भेद नहीं रहता है । जैसे सभी जीवात्माओं के प्रारब्धमय शरीर पंचतत्वों से निर्मितहोने के कारण शरीर

शरीर जड़ और नाशवान तथा आत्मा उससे भिन्न सच्चिदानन्द परमात्मा का अंश है। परन्तु भगवान के मंगलमय विग्रह और आत्मा की भिन्नता न होकर एकत्व ही रहता है। श्रीरा० च० मा० अयो० कां० १२७ दो० में महर्षि श्री वाल्मीकि जी ने श्री राम जी से कहा है कि—"चिदानन्दमय देह तुम्हारी।" किन्तु इस रहस्य को सर्वसामान्य लोग नहीं जानते। "विगतविकार जान अधिकारी।" भगवान् का विग्रह दिव्य सच्चिदानन्दमय है। इस बात को वही विशेष अधिकारी भक्त जानते हैं। भगवत्कृपा से जिनका मन सर्वथा निर्विकार होकर अहर्निश भगवत्पादारविन्द मकरन्द रस का रसास्वादन करता रहता है। किन्तु जो व्यक्ति विद्या को पढ़कर पाण्डित्याभिमान में चूर होकर शास्त्राध्ययन करता है, अथवा ज्ञान के अभिमान से विमत्त हो जाता है, उसे तो नित्य सच्चिदानन्दमय राम भानुकुल केतु का मंगलमय विग्रह भी प्राकृतिक ही दीखता है, और दीखेगा। भगवद्विग्रह यथावत् देखने के लिये सद्गुरु के द्वारा भावनामय दिव्यचक्षुओं की प्राप्ति की परमावश्यकता है। श्रीवाल्मीकि जी श्री रामनाम जपके प्रभाव से सर्वथा निर्विकार होकर भगवतत्त्ववेत्ता हो गये थे। इसलिये उन ने कहा कि-"रामसरूप तुम्हार, बचनअगोचर बुद्धिपर। अविगत अकथ अपार, नेतिनेति नित निगमकह ॥ अयो० का० १२६ दो० ॥ अत: उस सौन्दर्यसागर परमरसाम्बुनिधि मंगलमय रूप का दर्शन ही षट्दर्शनों के अध्ययन का परम फल है। यदि प्रभु का विग्रह मायिक है ऐसी धारणा बन गई तो पण्डित और मूर्ख में समानता ही है, कुछ भी अन्तर नहीं है।

मानव के मानवता की सफलता तभी है, जब कि इन चर्मचक्षुओं से भली भाँति उस परमरूप सागर में अवगाहन करे। हमारी आँखें उस परमतत्त्व को देखने के लिये ही व्याकुल हैं, जिसे देखने के बाद फिर और कुछभी देखना न रह जाये। वह तत्त्व क्या और कैसा है ? जब इस बात का विचार करते हैं तो सर्वप्रथम यही तर्क उपस्थित होती है कि जिसने नेत्रों को देखने की शक्ति दी है, उसी तत्त्व को देखने हेतु ही नेत्र अकुला रहे होंगे। नेत्रों के गोलक में श्यामपुतली में ही तो देखने की शक्ति निहित है। तो अंशभूता पुतली का जो पूर्ण स्वरूप सर्वाङ्ग नख ते शिख तक नीलाभ ज्योतिर्मय होगा, वही तो नेत्रों के दर्शन का विषय होगा। इसीतथ्य का उद्घोषक कविसंदेश देने लगा कि—"कोटिभानु जो उदय हों, तबहुं उज्यार न होय। तनिक श्यामकी श्यामता, जौं दृगपरी न होय" ॥ अतएव वह लोकोत्तर लावण्यधाम अपने रूप के जाल में फँसाकर जीवमात्र को अनुरागी बनाने हेतु "श्री दशरथअजिर विहारी" बनकर प्रतिष्ठित हुआ। तभी तो बालकरूप को ही जिस किसी ने देखा,

वह ठगा सा रह गया, सर्वदा के लिये उसी का हो गया । कवित्तरामायण में गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने लिखा है कि—"अवधेश के द्वारेसकारे गई, सुतगोद में भूपति लै निकसे । अवलोकिहौं सोचविमोचन को, ठगिसी रहि जो न ठगे धिकसे। पद १— महा कवि पुकारने लगे कि—अरे मुमुक्षुजनों ! आओ । इस रूपासव का पान करने वाले उन्मत्त भ्रमर बनकर भी तो देखो । तुम्हें इसीक्षण जीवन का चरम फल प्राप्त हो जायेगा । इससे आगे भी क्या कोई साध्य होता है ? नहीं । "प्राण प्राणके जीव के जिव सुखके सुखराम" तो यही हैं । इन्हें छोड़कर भटकना मृगतृष्णा मात्र है । पुनः-अरविन्द सो आनन रूपमरन्द, अनन्दित लोचन भृंग पिये । मन मो न बस्यौ अस बालक जौं, तुलसी जगमें फल कौन जिये ॥ पद २ ॥ ये तो धूलधूसरित वेष में भी कोटि कोटि अनङ्ग की रूपमाधुरी को लज्जित करने वाले हैं ? अति सुन्दर शोभित धूरिभरे, छबिभूरि अनंग की दूरि धरैं । क्यों न हो इनके सौन्दर्यकी तुलना करने के लिये सरस्वती ने तीनों लोकों और चौदहों भुवनों नवों खण्डों और इक्कीश ब्रह्माण्डों को छानडाला । परन्तु असफलता हो हाथ लगी । इनका सौन्दर्य तो अनुपमेय है न ? तुलसी तेहि औसर लावनता, दश चारि नौ तीन इकीश सबै । मतिभारति पंगुभई जो निहारि, बिचारि फिरी उपमा न फबै ॥ पद ७ ॥ अस्तु सुन्दरता की चर्मावधि श्री राघवेन्द्र की रूपमाधुरी समस्त जगत के चराचर प्राणिवर्ग को निहाल कर देनेवाली है । नर हो या नारी बाल हो या वृद्ध जिसने भी एकबार देखा, वह देखता ही रह गया, ठगा सा रह गया, आपा भूलकर विमुग्ध होगया ।

करतलबाणधनुप अतिमोहा । देखत रूप चराचर मोहा ॥

जिनवींथिन विहरें सब भाई । थकितहोहिं सब लोग लोगाई ॥

बा० कां० २ ४ दो० ॥ तनक हँसिहेरे री राजकुमार । बुधिबौराय हिराय-जातजग, रहत न देह सम्हार ॥ दूरहिं ते जाकेतन हेरत, मदनभयो जरिछार । सो त्रिपुरारि भिखारि वेषधरि, अलख जगाई द्वार ॥ सपनेहुं निकट जाति नहिं जाके माया मोह विकार । सो भुसुण्डि शिशुचरित विलोकत; फँसे प्रेम के जार ॥ सुनतबोल विनमोल बिकानी शारद सी हुशियार । 'रामसहाय' जाय सोइ जाने, अवध नगर क बजार ॥ यह रूप माधुरी अपना रूपजाल डालकर किसे वेसुध नहीं बना देती । ऐसी ही अभिव्यक्ति श्री मिथिलापुरी निवासिनी महिलाओं की मंगलमय मंजुल वाणी द्वारा व्यक्त हुई है। उन सबों की अनुभूति है कि—कोई भी शरीरधारी इस रूपमाधुरी को देखकर विमुग्ध हुये विना नहीं रह सकता है । यदिकोई निर्जीव हृदयहीन या दृष्टिहीन हो, तो उसकी चर्चा हम नहीं चलाते । परसजीव प्राणिवर्ग के लिये हमारा कथन अकाट्य है ॥

कहहु सखी अस को तनधारी। जो न मोह यहरूप निहारी ॥ बा० कां० २२१ दो०॥ इतने दावे के साथ तथ्यपूर्ण सिद्धान्त निरूपण वे निराधार ही नहीं कर बैठी थीं। प्रत्युत् उनकी वाणी ठोस प्रमाण के आधार पर स्फुटित हुई थी। उन्होंने नामरूपात्मक जगत को मिथ्या माननेवाले, । ज्ञानियोंमें शिरोमणि देहाभिमानशून्य योगिराज श्री विदेह जी महाराज की गति को प्रत्यक्ष ही तो देखा सुना है। उन्हें अपने महाराज की महिमा का यथार्थ बोध है कि—

जासुज्ञानरवि भवनिशि नाशा। वचन किरन मुनिकमल विकाशा ॥

अयो० कां० २७७ दो० ॥ वे सब जानती थीं, कि हमारे राजर्षि को किसी भी इन्द्रिय का विषय अपनी ओर आकर्षित करनेमें समर्थ नहीं है। क्यों कि—जे विरंचि निरलेप उपाये। पद्मपत्र जिमि जग जल जाये ॥ अयो० कां० ३१७ दो० ॥ ऐसे जीवनमुक्त श्री विदेहराज इसमधुर मनोहर मूर्ति को देखकर आपा खो बैठे थे। ज्ञान निष्ठा से च्युत हो गये। ब्रह्मानन्द न जाने कब उनके हृदय से निकलकर श्रीरामरूप परमानन्दसागर में विलीन हो गया था। नेत्रों की टकटकी सी लगी हुई थी। सहज विरागीमन विवश होकर अनुरागी बन गया था। उनका हृदय कहता था कि यह सौन्दर्य कभी मिथ्या हो ही नहीं सकता। यही तो परम सत्य है। तथापि (फिरभी) "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" का विवेक अपनी दुर्दशा से उबरने की सतत चेष्टा कर रहा था। उस समय उनके मनमें कैसा ऊहापूहा चल रहा था। बहुत समय बीतने पर बड़े साहस के साथ धैर्य धारण करते हुये, विश्वामित्र जी को प्रणाम करके प्रेमविह्वल वाणी से पूछा कि—

कहहुनाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनिकुलतिलक कि नृप कुलपालक ॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहिगावा। उभय बेषधरि की सोइ आवा ॥
सहज विरागरूप मनमोरा। थकित होत जिमि चन्द्चकोरा ॥
ताते प्रभु पूछौं सतिभाऊ। कहहुनाथ जनि करहु दुराऊ ॥
इनहिंबिलोकत अति अनुरागा। बरबश ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा ॥

बा० कां० २१६ दो०—इस परमानन्द की तुलना में वह ब्रह्मानन्द पासंगभर भी तो नहीं उतरता। सोई सुखलवलेश, जिनवारक सपनेहुं लहेउ। ते नहिं गनहिं खगेश, ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति ॥ अस्तु अब तो समस्त विदेहनगर में इस रूपमाधुरी का डंकाबजगया है। यद्यपि जनकपुरी सौन्दर्य की ही नगरी थी, और वहाँ के निवासी-

नगर नारिनर रूप निधाना । सुघर सुधर्म सुशील सुजाना ॥ जिनहिं देखि सबसुर नरनारी । भये नखत जनु विधु उजियारी ॥ बा० कां० ३१४ दो० ॥ इसप्रकार वर्णित किये गये हैं । यहाँ तक कि वहाँ श्वपच किरात धर्मव्याधादि भी ब्रह्मपरायण परमहंस स्थिति में प्राप्त थे । ऐसे सभी जीवनमुक्त नरनारी इस सौन्दर्य माधुर्य रस के प्रमत्त भ्रमर बन गये । धाये कामधाम सब त्यागी । मनहुं रंक निधि लूटनलागी ॥ निरखि सहज सुन्दर दोउभाई । होहिंसुखी लोचनफल पाई ॥ बा० कां० २२० दो० ॥ उस समय मिथिला के बालकवृन्द अपने मनोभव 'किशोर" कवि की वाणी में इसप्रकार व्यक्त करते हैं कि—

मिथिलापुरवासी हम बालक विरागी; जगरूप के न रागी तिन्हें रागी बनायेदेत । चित्तकीप्रतीति हमें सततरही है मित्र; परमविचित्र चित्र ताहु के दिखायेदेत ॥ ब्रह्मज्ञानियों का गढ़ परमपुरी में आज; रूपकेअगारे देखो आगी लगाये देत । श्यामगौर रूपकी "किशोर" मंजुमूरति ये; सारे ब्रह्मज्ञान की सफेदी ही मिटाये देत ॥

बालकों की दशा तो लुब्धभ्रमर जैसी है ही । अबोधशिशु भी किसी न किसी बहाने उनका स्पर्श पा लेना चाहतेहैं । बालकवृन्द देखि अतिशोभा । लगे संग लोचन मन लोभा ॥ सब शिशु यहिमिस प्रेमवश परसि मनोहरगात । तनपुलकहिं अतिहरष हिय; देखि देखि दोउभ्रात ॥ बा० कां० २२४ दो० ॥ अब युवतियों की दशापर दृष्टि-पात कीजिये । युवती भवन झरोखन लागीं । निरखहिं रामरूप अनुरागीं ॥ वस्तुत: सभी युवतियों का हृदय अनुराग रंग में रँग गया है । इस विश्वविमोहन सौन्दर्य के अंग अंग में कोटिकाम की कमनीयता को मात करनेवाली रूपमाधुरी को देखकर सभी बलिहारी हो रही हैं । उन्होंने ऐसा अलौकिक सौन्दर्य इसके पूर्व कभी कहीं देखा सुना भी तो नहीं है । अत: उनकी वाणी सहज ही स्फुरित होने लगी ॥ यथा—

कहहिंपरस्पर बचन सप्रीती । सखिइन कोटिकाम छविजीती ॥ सुर नर असुर नाग मुनि माहीं । शोभा असि कहुँ सुनियत नाहीं ॥ बा० कां० २२० दो० ॥

किसी सखी ने पूछही तो लिया कि— 'आली देवगणों की शोभा जो शास्त्रों में वर्णित है तथा ब्रह्मा विष्णु महेश त्रयदेवों के रूप की पुराणों में बहुत प्रसंशा की

गई है। उस विषय में तुम्हारे क्या विचार हैं ? तब तो उस भोली सखी को वह प्रवीणासखी सौन्दर्य बोधका पाठ पढ़ाते हुये समझाने लगी। कि "अरीबावरी? अपने मानवसमाज में कहीं कोई चारहाथ एवं चार या पाँच मुखों वाला व्यक्ति सुन्दर कहलाता है क्या ? यहाँ तो किसी के एक अँगुली भी अधिक हो जाये, तो वह छंगा व्यक्ति समाज में अशोभित माना जाता है। अस्तु इस सुन्दरता के सागर राजकुमारों की तुलना में वे देव अथवा अयदेव कोई भी टिकते नहीं हैं। क्यों कि—विष्णु चारि-भुज विधि मुखचारी। विकट वेष मुखपंच पुरारी ॥ अपरदेव अस कोउ न आही। यह छविसखी पटतरिय जाही ॥२२०॥ इस रूपमोहनी की जादू से मोहित होकर एक सखी तो अपने महाराज श्री विदेह जी के विवेक पर ही शंकित होकर कहने लगी कि—"अरी सखियों ! अपने महाराज श्री को लोग भले ही ज्ञान शिरोमणि कहते हों। किन्तु मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें तो हमारे बराबर भी बुद्धि नहीं है। यदि उनमें कुछ भी समझ होती, तो क्या इस लावण्य महोदधि श्यामले राज-कुमार को अपनी श्री किशोरी जी अर्पण न कर देते ? भला क्या इस शुभ कार्य में भी विलम्ब करना चाहिये ? मुझे तो उनमें अविवेक् का ही दर्शन हो रहा है। फिर उसने कह ही तो दिया कि—

सखि परन्तु पन राउ न तजई। विधि बश हठि अविवेकहिं भजईं ॥२२८ दो०

ऐसा विचार केवल एक ही सखी के मन में उठा हो, सो बात नहीं है। जनकपुर के सभी नरनारी इसी विचारधारा में निमग्न थे। भले ही वे सब अपने विचार प्रगटरूप में व्यक्त न कर पाते थे। परन्तु उन सबको श्री विदेहराज दुराग्रही, हठी प्रतीत होते थे। अतएव महाराज की जड़ता को दूर करने के लिये मन ही मन विधाता से प्रार्थना कर रहे थे।

रामरूप अरु सियछबि देखें। नरनारिन परिहरी निमेषें ॥ सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। विधि सन विनय करहिं मन माहीं ॥ हरुविधि वेगि जनक जड़ताई। मति हमार असि देहि सोहाई ॥ बिन विचार पन तजिनर नाहू। सीयराम कर करै बिबाहू ॥ जग भल कहै भाव सब काहू। हठकीन्हें अंतहुँ उर दाहू ॥ यहि लालसा मगन सब लोगू। वर साँवरो जानकी जोगू ॥

॥ २४८ ॥

केवल सामान्य प्रजावर्ग पर ही श्रीरामरूप के मोहनी मन्त्र का जादू चला हो,

ऐसी बात नहीं । राजर्षि की प्रियतमा अम्बा श्री सुनयना जी को भी लग रहा था कि - महाराज श्री की—बुद्धि पर पाला पड़ गया है । अन्त में उनको भी कहना ही पड़ा कि—भूप सयानप सकल सिरानी । सखि बिधि गति कछु जाति न जानी ॥ २५६ दो॰ ॥ उधर श्री मिथिलेशराज किशोरी जू भी अपने पिताजी के भयकर हठ से क्षुब्ध हो रही थीं । तथा अनुभव करने लगी थीं कि पिता जी को लाभ हानि का सामान्य ज्ञान तक नहीं रह गया है । अहहतात दारुण हठ ठानी । समुझत नहिं कछु लाभ न हानी ॥ सचिव सभय सिख देई न कोई । बुधसमाज बड़ अनुचित होई ॥ २५८ दो॰ ॥ मानवहृदय से अनभिज्ञ कोरा तार्किक यह कह सकता है कि—अपने पिता जी के विषय में ऐसा सोचना उचित प्रतीत नहीं होता. परन्तु श्रीरामरूप माधुरी का जादू ही ऐसा है कि-जो उचित अनुचित का विवेक नहीं रहने देता है । अस्तु श्री जनकनन्दिनी जू तो अपनी "निजनिधि" को देखकर कब की बावली सी हो चुकी थीं । यथा—देखिरूप लोचन अकुलाने । हरषे जनु निजनिधि पहिचाने ॥ थकेनयन रघुपति छविदेखें । पलकनि हूँ परिहरीं निमेषे ॥ अधिकसनेह देहभइ भोरी । शरदशशिहि जनु चितव चकोरी ॥ दो॰ २३२ ॥ इस दशा में 'जित देखौं तित राम मई" सृष्टि का दर्शन होने लगता है क्यों कि नेत्र इन्हें देखलेने के बाद फिर और कुछ देखना ही नहीं चाहते हैं । भले जगत को देखने का बहाना किया जावे परन्तु यथार्थतः सर्वत्र इन्हीं का दर्शन होने लगता है । यथा—

देखन मिस मृग विहँग तरु फिरइ बहोरि बहोरि । निरखि निरखि रघुवीर छवि बाढ़ै प्रीति न थोरि ॥ रा॰ बा॰ दो॰ २३४

ऐसी स्थिति में परमात्मा अपनीशक्ति को वरण करनेके लिये लालायित होता है । तभी वह स्वयं भी भवचाप भंजन करके वरवेष (दूलहरूप) धारी बनता है । एक तो वैसे ही उसका स्वरूप अप्रतिम था । जब वह वर (दूलह) बना, तबतो उसके सौन्दर्य सुधासागर का पान करने के लिये, देवलोक में हलचल मच गई । देवगणों ने इसरूप का निरीक्षण करने हेतु पाँच पंच नियुक्त किये, वे थे ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्र और देवसेनापति स्वामी कार्तिक जी । अनुपमेय सुन्दर लोकोत्तर लावण्य पर दृष्टि पड़ते ही भगवान् शंकर अपार आनन्दाम्बुनिधि में निमग्न हो गये । उनका मनमयूर नृत्य करने लगा । रोम रोम फरकने लगा । नेत्र रसविभोर हो गये । रामरूप नखशिखसुभग बारहिंबारनिहारि । पुलकगात लोचनसजल उमासमेतपुरारि॥३१५दो॰

भगवान् शंकर जी का तीसरा नेत्र संहारक होने के कारण उसे वे प्रायः बन्द ही रखते हैं। उसका प्रयोग यदा कदा ही करने के लिये उन्हें विवश होना पड़ता है। परन्तु आज उन्हें अपने पाँचमुखों के दश नेत्रों से तृप्ति न हो रही थी। उनके तीसरे नेत्र श्री राम जी के दूलह रूप सौन्दर्य माधुर्यार्णव में गोते लगाने के लिये आतुर हो रहे थे। अस्तु पाँचों मुखों के तीसरे नेत्र खुले विना नहीं रह सके। अधिकांश लोगों को शंका थी कि अब प्रलयाग्नि निकलेगी क्या ?

किन्तु यह देखकर सभी विस्मय विमुग्ध रह गये कि—उन प्रलयंकर नेत्रों से आज अग्नि वर्षा तो नहीं (प्रभु प्रेमाश्रुओं की) जल वर्षा हो रही है। पन्द्रहों नेत्र झरने की भाँति झर झर वरस रहे हैं। अग्नि से ही जल की उत्पत्ति वेद वर्णित है॥ यह तथ्य सभी को प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो गया। उस समय शंकर जी इतते आत्मविभोर थे कि उन्हें विकटवेष कहे जाने की चिंता नहीं रह गई थी। "विकठ वेष मुखपंच पुरारी" कहा जावे तो कहा जावे। उन्हें अपने पन्द्रहोंनेत्र आज अत्यन्त प्रिय लग रहे हैं॥

शंकर रामरूप अनुरागे। नयन पंचदश अतिप्रिय लागे॥ ३१७ दो० ॥

अन्य सभी की अपेक्षा भगवान् विष्णु अधिक सौन्दर्यमूर्ति हैं, इसीलिये श्री जी सर्वदा रीझकर उन्हीं के चरणों की दासी वनी रहती हैं। जिनके मोहनीरूप को देख कर कामारि कहलानेवाले भगवान् शंकर भी कामातुर हो गये थे किन्तु आज वही परम शोभाधाम किसी अलौकिक सौन्दर्य सिन्धु में डूबे जा रहे थे। उन दम्पति पर भी श्रीराम रूपमाधुरी का जादू विना चले न रहा। "हरि हितसहित राम जवजोहे। रमासमेत रमापति मोहे॥" बूढ़ेवावा चतुरानन ही कहाँ पीछे रहते ? स्वेतदाढ़ी से उनको वृद्धावास्था प्रकट हो रही थी। वड़े ही पश्चाताप के साथ वह सोच रहे थे कि—सृष्टिनिर्माण में मुझसे भारी भूल हो गई। मैंने विपुलनेत्रवाले वहुत जीवधारी बनाये, किन्तु अपने शरीर में अधिक नेत्र न वना पाया। आज यदि मेरे शरीर में वहुत नेत्र होते तो मुझे न जाने कितना आनन्दलाभ होता। परन्तु अव क्या करूँ ? विवश हूँ। "निरखि रामछवि विधि हरषाने। आठैनयन जानि पछिताने" ॥ ३१७ दो० ॥ इन बूढ़ेवावा की अपेक्षा स्वामी कार्तिक जी का आनन्द डेढ़गुना उमड़ रहा था क्यों कि उनके वारह नेत्र थे। "सुरसेनप उर वहुत उछाहू। विधिसेडेवढ़लोचन-लाहू" ॥ ३१७ दो० ॥ देवेन्द्र के दुराचार के प्रतीक सहस्रनेत्र आज के पूर्व भले ही निन्दनीय रहे हों। किन्तु श्री राम जी के दूलहरूप ने उन्हें आज महत्त्वपूर्ण वना दिया। उनके वे सहस्र नेत्र आज परम प्रशंसनीय हो गये थे। आज तो देवेन्द्र ही

सबकी स्पृहा के पात्र बन गये थे ॥

रामहिं चितव सुरेशसुजाना । गौतमश्राप परमहित माना ॥
देवसकल सुरपतिहिं सिहाहीं । आज पुरन्दरसम कोउनाहीं ॥ ३१७ दो० ॥

देवसमाज अपने पंचोंकी इस रूपाशक्त दशाको देखकर सबके सब दूलहरूप-माधुरीरस का पान करके परमानन्दाम्बुनिधि में निमग्न हो गये ॥ "मुदित देवगन रामहिं देखी ।" क्यों न हो ? इस वरवेषधारी रूपकेभूप को स्वर्ग सौन्दर्यका देवता कामदेव अपनी पीठपर चढ़ाकर नृत्य कर रहा है । तो उसे देखकर किसकामन वश में रहेगा, पागल न बन जायेगा ? आगे देखिये—जब वह रूपकाभूप दूलह बनकर मण्डप में प्रतिष्ठित हो गया । तब "रामचन्द्र मुखचन्द्रछवि लोचन चारु चकोर । करतपान सादर सकल प्रेम प्रमोद न थोर ॥ ३२१ ॥ सभी देखने वाले आत्म-विभोरहोकर एकटक रूपमाधुरी का पानकर रहेथे । श्रीमिथिलानिवासी तो श्रीकिशोरी जू के प्रगट होनेके कारण प्रेमकी मूर्ती थे । और देवता तो स्वाभाविक रूपाशक्त होते हैं । अब कुछ क्रूरस्वभाव तथा शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध से उपराम चित्तवाले मुनिजनों की दशा देखिये । प्रथम तो श्री विश्वामित्र जी की दशा देखिये कि—"पुनि चरननि मेले सुतचारी । रामदेखि मुनि देहबिसारी ॥ भयेमगन देखत मुखशोभा । जनुचकोर पूरन शशिलोभा" ॥ बा० कां० २०७ दो० ॥ श्रीरामजी को देखकर शरीर की स्मृति न रही । मुख की मंगलमय मंजुल माधुरी देखकर एकटक देखते ही रह गये ॥

पुनः—दण्डकारण्य की यात्रा समय मार्ग में अनेक मुनियों के चित्तको चुराते हुये, परमानन्दसागर में डुबाते हुये. दण्डकारण्य में प्राप्त हुये । वहाँ बन में रहनेवाले सर्वथा निर्विकारात्मा आत्मरमण महर्षियों की दशा देखिये । अगस्त जी के आश्रम में— 'मुनिसमूह में बैठे सन्मुख सबकी ओर । शरद इन्दुतन चितवत मानहुं निकर चकोर" ॥ आरण्य कां० १२ दो० ॥ अनेकमुनि जन चकोरवत एकटक रूपमाधुरी पान कर रहे हैं ॥ पुनः—देखि राममुखपंकज मुनिवर लोचन भृंग । सादर पानकरत अतिधन्य जन्म सरभंग ॥ आ० कां० ७ दो० ॥ श्री सरभंग जी के नेत्र रूपी भ्रमर श्री राम मुखकमलछवि रस का अबाध पान कर रहे हैं ।

यहां—भगवत गुणदर्पण पृष्ट ४४ से इस श्लोक को लिया है— और

"पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्य वासिनः । दृष्ट्वा रामं हरिस्तत्र भोक्तु-मैच्छत्सुविग्रहम् पद्मपु० ॥ मानस सिद्धान्त पृ० ४४ से

अर्थ—पूर्व समय में जब श्री राम जी दण्डकवन में पधारे, वहां के निवासी

सभी महर्षियों ने जब श्री राम जी को मंगलमयि मंजुल मधुर रूप मूर्ति का दर्शन किया तब उनके हृदय की दशा का परिवर्तन हो गया । वह सबके सब अपने हृदय में भावना करने लगे कि—यदि मैं इन श्री राम जी की नायिका बन जाऊँ । और यह मुझे नायक रूप में प्राप्त हो जायें तो, हम इनके सर्वांग के स्पर्श का भलीभाँति अनुभवकर सकतेहैं ॥ "रूपौदार्यगुणैपुंसां दृष्टिचित्तापहारकम् वाल्मी. अ० ॥" अर्थात् भगवान् श्री राम जी अपने रूप के उदारगुण द्वारा पुरुषों के भी नेत्र और चित्त को अपहरण करने वाले हैं ॥ और श्रीकृष्णोपनिषद की प्रथम श्रुति इसबात को बहुत ही संक्षेप किन्तु सुस्पष्ट रूपसे बताती है कि—"हरिः ॐ श्री महाविष्णुं सच्चिदानन्द-लक्षणम् रामचन्द्रं दृष्टवा सर्वाङ्ग सुन्दरं मुनयो बनवासिनौविस्मितावभूवः" ॥ १ ॥ और वा० रा० अ० कां० सर्ग १ के १३ वें श्लोक को देखिये ॥ "रूप संहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम् । ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य बनवासिनः" ॥ अर्थात् श्री राम जी के रूप का गठाव श्री एवं सुकुमारतामय सुन्दर वेष को देखकर सभी बनवासी आश्चर्य चकित हो गये ॥

तब महिलाओं के आकर्षण होने में कुछ भी बड़ी बात नहीं है, क्यों कि वह तो स्वाभाविक ही रूप की दासी होती हैं ॥ जब कि—अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशन विहीनं जातं तुण्डम् ॥ तपस्या करते करते सर्वथा विशुद्धात्मा निर्विकार चित्त वाले महर्षियों के हृदय की दशा नवीन कामिनियों जैसा हो गई । तब साधारण प्राणियों की तो बात ही क्या कही जाय ॥ निवृत्तमार्गियों के परमाचार्य समदर्शी परमहंस श्री सनत्कुमारादि महर्षिगण सर्वदा ब्रह्मानन्दमें लीन रहनेवाले थे । उनकी स्थिति देखिये ब्रह्मानन्द सदा लयलीना । देखतबालक बहुकालीना ॥ रूपधरे जनु चारिउ वेदा । समदर्शी मुनि विगत विभेदा ॥ आसा बसन व्यसन यह तिनहीं । रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं ॥ ऐसे सत्संग परायण मुनियों ने दण्डक वन में महर्षि श्री अगस्त जी से श्रीराम कथा में श्रीराम रूप से ओत प्रोत महत्त्वपूर्ण जो चर्चा सुनी थी । उन्हें लगा कि भला हमलोग भी स्वयं अनुभव करें कि क्या श्रीरामरूप का सचमुच ऐसा प्रभाव है कि—आत्मदर्शी मुनियों का भी योग और वैराग्य छूट जाता है । अस्तु वे चारों भाई दण्डकारण्य से सीधे श्री अवध को ही चले आये । भगवान् श्रीराम जी अम-राई में विराजमान थे । महर्षिगण जब श्री राम जी के सामने आये, और श्रीराम जी को देखा । तब गोस्वामी जी ने लिखा कि—

मुनि रघुपति छवि अतुलविलोकी । भयेमगन मनसकेनरोकी ॥

श्यामलगात सरोरुहलोचन । सुन्दरता मन्दिर भवमोचन ॥
एकटकरहे निमेष न लावहिं । प्रभुकरजोरे शीश नवावहिं ॥
तिनकैदशा देखिरघुवीरा । श्रवत नयनजल पुलकशरीरा ॥

उ० कां० ३३ दो० ॥

जब कि परमज्ञानी एवं योगिराजों की मुनियों की ऐसी स्थिति होजाती है तो तब भगवद्भक्ति निमग्नचित्तवाले मुनियों के विषयमें विशेष कुछभी कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है। उनकी स्थिति तो सर्वदा इस प्रकारकी रहती है कि—'लोचन चातक जिन करिराखे। रहहिं दरश-जलधर अभिलाषे। निदरहिं सरित सिन्धु सर वारी। रूपविन्दुजल होहिं सुखारी ॥ अयो० का० १२८ दो० ॥ अस्तु श्रीराम रूप के चातक भक्त भगवान् के ही अन्य रूपों की ओर आँख उठाकर देखना नहीं चाहते हैं। उनका तो प्राण श्रीराम रूप ही है। उससे विलग होने पर वे छटपटाने लगते हैं। श्री सुतीक्षण जी को प्रभु ने जगाया, जब समाधि से उपरामचित्त नहीं हुये तब प्रभुने एकलीला की वह यह कि—भूपरूप तबरामदुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा ॥ मुनिअकुलाय उठातब कैसे । विकलहीन मनि फनिवर जैसे ॥ आ० कां० १० दो० ॥ तात्पर्य यह है कि वे तो श्रीरामरूपमाधुरी जल के मीन थे। इसलिये उससे अलग (विछोह) होनेपर विकलता होना स्वाभाविक ही था। अब आप रौद्ररस के अवतार ही कहे जानेवाले, परमक्रोधावेष में भरे हुये, शिवधनुष तोड़नेवाले को मारने का संकल्प लेकर ही आनेवाले परशुराम जी की विचित्र दशा को देखिये ॥

"रामहिं चितय रहे भरिलोचन । रूपअपार मार मदमोचन" ॥

बा० कां० २६६ दो० ॥

"दृग दिवान जेहि आदरहि मन तेहि हाथ विकाय" का सिद्धान्त ही है। अतः हृदय में प्रेमरस की सृष्टि होने लगी। वह बहुत ही आश्चर्यपूर्वक सोच रहेथे, कि—"मोरे हृदय कृपा कस काऊ" ॥ भगवान् के अन्य अवतारोंपर जीवोंका मोहित होना ही पाया जाता है। भगवान के अवतारों का नहीं। परन्तु श्रीरामरूप पर परशुराम जी का मुग्ध होना समग्र अध्यात्म शास्त्रों में एक अप्रतिम (अनुपम) उदाहरण है। परशुराम जी की वाणी ही श्रीराम रूपमाधुरी की स्तुति करती हुई पुष्ट प्रमाण है कि—सेवक सुखद सुभग सबअंगा। जय शरीर छवि कोटि अनंगा ॥ करौं काह मुखएक प्रशंसा। जय महेश मन मानस हंसा ॥ २८५ दो० ॥

तपस्वी मुनियोंपर रूपमाधुरी का प्रभाव अवलोकन करलेने के अनन्तर अब

सामान्य ग्रामीण नागरिकों की ओर चलें । श्रीअवध मिथिलावासी नागरिकोंका रूप रसपान करना प्रथम ही कहा गया है । वास्तविक रूप से उन्होंने श्री युगलसरकार के लोकोत्तर लावण्य का रसास्वादन किया है । जिनकी अनुपमेयता को दोहाई सर स्वती, ब्रह्मा, शिव, पार्वती, शेष, गणेश, चिरंजीवीलोमश एवं कागभुसुण्डि देते हैं । परम पारखी देवर्षिनारद, भगवान् लक्ष्मीनारायण एवं सुजान श्री हनुमानजी का भी यही निर्णय है कि—अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों में प्रकाशमान रूपकी अलौकिक जोड़ी श्री सीताराम जी की ही है ।

बानी विधि गौरी हर शेषहूँ गनेशकही । सहीभरी लोमश भुसुण्डिबहुबारिषो ।
चारिदशभुवन निहारि नरनारि सब; नारद सों परदा न नारद सो पारिखो ।
तिनकहीजगमें जगमगति जोरीएक, दूजो को कहैया सुनैया चष चारिखो ।
रमा रमारमन सुजान हनुमानकही, सीय सी न तीय न पुरुष राम सारिखो ॥

कवितावली पद नं० १६] श्रीअवध मिथिला के सभ्य सुसंस्कृत नागरिकों के पश्चात् अर्द्धसभ्य ग्रामीणों द्वारा श्रीराम रूपमाधुरी के दर्शन के समय की मनोभावनाओं की झाँकी देखिये—ये लोग भले ही चाहे मस्तिष्क के धनी न भी माने जायें । किन्तु इनके हृदय की गम्भीरता की थाह कौन पा सकता है । श्री अयोध्या एवं मिथिलावासियों के तो श्री राम जी अपने सम्बन्धी भी थे । परन्तु इन ग्रामीणों ने अपरिचित राजकुमारों के प्रति (साथ) जैसा अनुपमेय प्रेममय व्यवहार किया वह रूपमाधुरी के जादू से ही उद्भूत था । वे तो प्रथम दर्शन के समय से ही चित्र-शाला के चित्रों को भाँति स्तब्ध रह गये थे । "तुलसी विलोकि के तिलोक के विलकतीनि, रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं" ॥ इन ग्रामीण महिलाओंके बिचार से राजारानी वज्रहृदय, कर्तव्याकर्तव्य ज्ञानशून्य महामूर्ख जैसे प्रतीत होने लगे थे । जिन्होंने आँखों में रखने योग्य मूर्तियों को बनवास दिया, वे सब सोचती थीं कि—हमें आश्चर्य तो इसबात का लगरहा है कि इनका दर्शन क्षणमात्र पानेके पश्चात् इनसे वियोग होते समय जब हमारे प्राण निकल से जारहेहैं, तो इनके प्रिय परिवार और परिजन पुरजन कैसे जीते होंगे ? ॥

"रानी मैं जानी अयानीमहा, पविपाहन हूंते कठोर हियो है । किन्तु—
राजहु काजअकाज न जान्यों; कह्यो तियको जिनकानकियो है ॥
ऐसी मनोहर मूरति ये; बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ।
आँखिन में सखि राखिवे जोग; इन्हें किमि कै बनबास दियो है ॥

[कवितावली पद नं० २०] वे उनके पीछे पीछे चलकर उसीस्थानपर पहुं-चना चाहतीहैं जहाँ वे रात्रिमें विश्राम करेंगे। यद्यपि यह सुनिश्चित है कि अपरिचित परपुरुष के पीछे पीछे चल देने पर उनकी लोक में निन्दा होगी लोग उपहास करेंगे। किन्तु उन्हें इसकी चिन्ता ही कहाँ है ? इन मनोहर मूर्तियों के दर्शन से जो सुख मिलेगा, उसकी तुलना में सांसारिक उपहास परिहास को सहज में सहन किया जा सकेगा ॥

"धरिधीरकहैं चलु देखिय जाय; जहाँ सजनी रजनी रहिहैं।
कहिहै जगपोच न सोचकछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं ॥
सुखपाइहैंकान सुनेबतियाँ, कल आपस में कछु पै महिहैं।
"तुलसी" अतिप्रेम लगीं पलकें, पुलकीं लखि रामहिये महि हैं ॥

[कवितावली पद नं० २३] जनजन की यही दशा है। जिसने उन्हें एकबार भी देखलिया, वह फिर सर्वदा के लिये उन्हीं का हो गया। उसका तन जहाँ भी रहा हो मन तो उन्हीं मनमोहन के साथ चला गया। रा० च० मा० अयो० कां० की झाँकी देखिये। " ग्रामनिकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरश नारिनर धाई ॥ होहिं सनाथ जनमफलपाई। फिरहिं दुखितमन संगपठाई ॥ १०६ दो० ॥ "जिन देखे सखी सतभायहुं ते, तुलसी तिनतौ मन फेरि न पाये" ॥ कवितावली २४ पद इन ग्रामीणों की समर्पणवृत्ति एवं सेवाभावना की झलक देखने के लिये श्रीरामचरितमानस का यह प्रसंग अत्यन्त पठनीय है। अयो० कां० दो० नं० ११४ संपूर्ण तथा दो० नं० १५ में एकटक सब सोहैं तक।

सीतालखन सहित रघुराई। ग्रामनिकट जब निकहिं जाई। सुनि सबबाल-वृद्ध नरनारी। चलहिं तुरत गृहकाज बिसारी ॥ राम लखन सिय रूपनिहारी। पाय नयनफल होहिं सुखारी ॥ सजल विलोचन पुलकशरीरा। सब भय मगन देखि दोउबीरा ॥ वरनि न जाय दशा तिनकेरी। लहि जनु रंकन सुरमनि ढेरी ॥ एक न एक बोलि सिखदेहीं। लोचन लाहुलेहु छन एहीं ॥ रामहिंदेखि एक अनुरागे। चितवत चलेजाहिं सँगलागे ॥ एक नयन मग छवि उरआनी। होहिं शिथिल तन मन वर बानी ॥ एकदेखि बटछाहँ भलि; डासि मृदुलतृन

पालकाइहिं गवाँइअ छिनकश्रम, सबनय आवहिं कि प्राता॥११४॥एक कलश भरि आनहिं पानी । अँचइअ नाथ कहहिं मृदुबानी ॥ सुनि प्रियवचन प्रीति अति देखी । राम कृपाल सुशील विशेषी ॥ जानी श्रमित सीय मनमाहीं घरिक बिलम्ब कीन वटछाहीं ॥ मुदित नारिनर देखहिं शोभा । रूपअनूप नयन मन लोभा ॥ एकटक सबसोहिं चहुँओरा । रामचन्द्र मुखचन्द्र चकोरा ॥११५ दो०

अहा कैसा अद्भुत समर्पणभाव, इन्होंने तो अपना मन, चित्त बुद्धि अन्तःकरण सभी कुछ समर्पण करदिया है । पुनः दो० नं० ११६ में—

रामलखन सिय सुन्दरताई । सब चितवहिं चितमन मति लाई ।

थके नारिनर प्रेम पियासे । मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे ॥

भले ही इन ग्रामीणों ने शास्त्रीय ज्ञान न प्राप्तकिया हो, तथापि अपनी सहज बुद्धिके आधार पर कितना स्पष्ट निर्णय देते हैं कि—ये ब्रह्मा जी की सृष्टि से परे कोई परमतत्त्व हैं । विधाता इनके समकक्ष (समान) दूसरी आकृति आजतक नहीं बनापाया, अतः इन्हें वन में छिपाकर स्वयं निन्दा से बचना चाहता है । दो० नं० १२० में देखिये कि—

एक कहहिं ये सहज सोहाये । आप प्रगटभय विधि न बनाये ॥ क्योंकि

जहँलगि वेदकही विधि करनी । श्रवन नयन मनगोचर बरनी ॥

देखहुखोजि भुवन दशचारी । कहँ असपुरुष कहाँ असनारी ॥

इनहिं देखि विधिमन अनुरागा । पटतरजोग बनावन लागा ॥

कीन बहुतश्रम ऐक न आये । तेहि इरषा बनआनि दुराये ॥

एककहहिं हमबहुत न जानहिं । आपहिं परमधन्य करि मानहिं ॥

ते पुनिपुन्य पुंज हम लेखे । जिन देखहिं देखिहैं जिन देखे ॥

अहह इनके हृयद में कितनो कोमल भावनायें तरंगित हो रही हैं । जो इन सुकुमार मूर्तियों के चरणों के भूमि से स्पर्श होनेमात्र से संकुचित हुई जारही हैं । उन्हें लगता है कि हम इन्हें अपने नेत्रों में बसालेतीं, तो फिर इन्हें इस कठोर भूमि पर चलना तो नहीं पड़ता ॥

परसत मृदुलचरण अरुणारे । सकुचत महि जिमि हृदय हमारे ॥

जौं माँगा पाइअ विधिपाहीं । ए रखिअहिं सखि आँखिन माहीं ॥
जे नरनारि न अवसर आये । तिन सियराम न देखन पाये ॥
सुनि सुरूप बूझहिं अकुलाई । अबलगि गये कहाँलगि भाई ॥
समरथ धाय विलोकहिं जाई । प्रमुदितफिरहिं जनमफल पाई ॥
॥ १२१ दो० ॥

अब सभ्य नागरिकों की संस्कृति (सभ्यता) से सर्वथा कोशों दूर रहनेवाले निपट गँवार वन्य पशुवत् जीवन यापन करनेवाले, केवल लूटना मारना ही जिनका एकमात्र व्यवसाय (व्यापार) रहा है, उनलोक किरातों की भावना को देखें। सच्चा जादू तो वही है कि शिरपर चढ़कर बोलता है । अतः श्री राम जी की रूप-माधुरी ने उन कोल किरातों के जीवन में परिवर्तन कर दिया । उसे उन्हीं के शब्दों में देखिये । वह कहते हैं कि—

हम जड़जीव जीवगनघाती । कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥
पापकरत निशिबासर जाहीं । नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं ॥
सपनेहुँ धर्मबुद्धि कस काऊ । यह रघुनन्दन दरश प्रभाऊ ॥
जबते प्रभुपद पदुम दिहारे । मिटे दुसह दुख दोष हमारे ॥२५१ दो०

इसके पूर्व श्रीरामजी जब चित्रकूट पहुंचे । तब गोस्वामी जी ने लिखा । कि—

यह सुधि कोल किरातन पाई । हरषे जनु नवनिधि घर आई ॥
कन्दमूल फल भरि भरि दोना । चले रंकजनु लूटन सोना ॥
तिन महँ जिन देखे दोउ भ्राता । अपर तिनहिं पूछहिं मगजाता ॥
कहत सुनत रघुवीर निकाई । आय सबनि देखे रघुराई ॥
करहिं जोहार भेंट धरि आगे । प्रभुहिं विलोकहिं अतिअनुरागे ॥
चित्रलिखे जनु जहँ जहँ ठाढ़े । पुलकशरीर नयनजल बाढ़े ॥
रामसनेह मगन सबजाने । कहिं प्रियबचन सकल सनमाने ॥
प्रभुहिं जोहारि बहोरी बहोरी । बचन विनीत कहहिं करजोरी ॥

अब हम नाथ सनाथ सब भये देखि प्रभु पाय ।
भागहमारे आगमन राउर कोशलराय ॥ १३५ दों० ॥

लगातार १३६ तथा १३७ दो० में—बिदा किये शिरनाय सिधाये । प्रभुगुन कहत सुनत घर आये ॥ तक इनके प्रेम की झलक है । इन कोल किरातों ने तो श्रीराम दर्शन से अपने को सपरिवार धन्य माना ही है । अब यह देखिये कि वनके पशु एवं पक्षियों पर श्री रामरूपमाधुरी का कैसा प्रभाव पड़ा ॥ "फिरत अहेर राम-छवि देखी । होहिं मुदित मृगबृन्द बिशेषी ॥ इन वन पशुओं का चित्र गोस्वामी जी ने कवितावली में बहुत ही सुन्दर ढंग से खींचा है । वहाँ पर दिखाया गया कि वे मृग स्पष्ट देख रहे हैं कि-कोई शिकारी हमारे प्राण लेने के लिये आ रहा है धनुष पर बाण संधान किये है । हमे मार ही देना चाहता है । तथापि इस शिकारी के रूप की मोहनी ने हमें पहले ही घायल कर दिया है । अब इनको निहारते रहने के अतिरिक्त हमे चैन ही कहाँ है ? प्यारे प्राण लेता है तो ले ले, परन्तु अपने रूप-माधुरी की एक झलक जी भरकर देख लेने दे । तेरे रूप के जाल में फँसकर अब हम छूटकर भागना भी नहीं चाहते हैं ॥

"सरचारिक चारु बनाय कसे; कटि पानि सरासन सायक लै ।
बनखेलत राम फिरैं मृगया, तुलसी छवि सो बरनै किमि को ॥
अवलोकि अलौकिक रूपमृगी, मृग चौंकि चितैं चितवैं चित दै ।
न डगैं न भगैं जियजानि सिलीमुख, पंचधरे रतिनायक है ॥ २७ ॥

उधर नभचारी पक्षीगण उड़ना छोड़कर रूप छटा का अवलोकन करते हैं, तो उद्भिज योनि में पड़े हुये वृक्ष वनस्पति आदि उनका स्पर्श पाने को समुत्सुक हैं। ऐसा कौन प्राणि या पदार्थ है जो राघवेन्द्रका स्पर्श पाकर परमधन्य न हो जावे ॥ "नयनवंत रघुबरहिं बिलोकी । पाय नयनफल होहिं बिशोकी ॥ परसि चरनरज अचर सुखारी । भये परमपद के अधिकारी" ॥ १३९ दो० ॥ सात्विक भावापन्न खग मृग वनस्पति की बात छोड़कर घोर क्रूरकर्मा सहज तामस स्वभाववाले साँप और बिच्छू की गतिविधि का अवलोकन करें । सर्पिणी अपने ही बच्चों को खाकर ही अपनी क्षुधा (भूख) को शान्त करती है, तथा जो बिच्छू अकारण ही प्रत्येक वस्तु पर अपने डंक की चोट मार करके आतंकित करने का गुमान रखता है । शेष सहस फन विष धरैं, तऊ न चलैं उतक । एक बूँद बिच्छू धरै, चलत उठाये डंक ॥ ऐसे साँप और बिच्छू भी जिन चरणारविन्दों की कोमलता देखकर ठगे से रह गये । वे अपने विष से किसी न किसी भाँति मुक्ति पा लेना चाहते हैं । ताकि निर्विष होकर फिर वे भी इन चरण कमलों का परम सुखद स्पर्श पाने का सौभाग्य लाभ प्राप्त कर सकें ॥

"जिनहि निरखि मग साँपिनि बीछी । तजहिं विषम विषतामस तीछी" ॥

अयो० कां० २६२ दो०॥ केवल थलचरों पर ही नहीं, आगे जलचरों पर भी इस रूपमाधुरी की मोहनी ने विलक्षण जादू किया है । लंका कां० दो० नं० ४ में—

"मकर नक्र नाना झष व्याला । सतजोजन तन परम विशाला ॥लंका कां० ४ दो०॥ ऐसेउ एक तिनहिं जे खाहीं । एकन के डर तेपि डराहीं ॥ प्रभुहिं विलोकहिं टरहि न टारे । मन हर्षित सबभये सुखारे ॥ तिनकी ओट न देखिय वारी । मगनभये हरिरूप निहारी" ॥ नलनील द्वारा निर्मितपुल बानरोंसेना के बाहुल्य से बहुत छोटा पड़ रहा था । समुद्र में जलके ऊपर अनेक जलजन्तु तैरते हुये श्री रामजी की रूपसुधामाधुरी का पानकर रहे थे । अनेक बानर उन जलजन्तुओं की पीठ पर पैर रखकर जा रहे थे, परन्तु वे सब जलजंतु श्रीरामरूपमाधुरी पान करने में इतना अधिक रस पा रहे थे कि वानरों के पीठपर चढ़ने से टस से मस भी नहीं हुये ।

सेतुबन्ध भइ भीरअति; कपि नभ पन्थ उड़ाहिं ।

अपर जलचरनि ऊपर; चढ़ि चढ़ि पारहिं जाहिं ॥ लंका कां० ४ ॥

इस प्रकार जल थल नभ में रहनेवाले जीवमात्र को श्रीरामरूपमाधुरी एकबार दृष्टिगोचर होते ही सर्वदा के लिये विनामोल के ही खरीदकर अपना बनालेती है । परन्तु वह जादू ही क्या, कि जो मायावियों पर भी अपनी मायाका प्रभाव न डाल पावे ? अस्तु अब आप महामायावी दुष्टप्रकृतिवाले निशाचरों की स्थिति पर भी अपनी दृष्टिपात करें । जिनके विषयमें स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि—दया धर्म से से उन्हें स्वप्न में भी नाता नहीं रहता है । यथा—

"कामरूप जानहिं सबमाया । सपनेहुँ जिनके धर्म न दाया" ॥ बा० कां० १८१ दो० ॥

जनस्थान वासी मायावी राक्षसों का शासन करनेवाली रावण की बहिन शूर्पणखा तो प्रथम दृष्टि में ही इनको अपना हृदय समर्पित कर वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ने को तैयार हो गई । किन्तु अपने को असफल होते देख बलपूर्वक प्रयास करने में अपने कान नाक कटवा बैठी । तब अपनेभाई खरदूषण त्रिशिरा के पास जाकर अपने कान एवं नाक काटने के प्रसंग में झूठी बातें बनाकर प्रभु पर दोषारोपण किया । सुनते ही क्रोध में भरकर चौदह हजार राक्षसी सेना लेकर मारने पर उतारू हुआ खरदूषण जब श्री राम जी के सामने गया । जटाजूट कसकर खड़ेहुये धनुषधारी तपस्वी वेष में प्रभु को मंगलमय मंजुल मूर्ति का दर्शन करते ही, उनक्रूरकर्मा निशाचरों के हृदय में करुणारस का संचार हो गया । वे पलमात्र के दर्शन से ही पिघले

जा रहे थे। शरीर रोमांचित हो रहा था, न जाने कि उनका रौद्रभाव कहाँ चला गया। यह कैसा रसपरिवर्तन ? अप्रतिम सौन्दर्य मूर्ति ने रौद्ररस को पिघलाकर करुणारस का संचार कर दिया था। उन सबों के अस्त्र शस्त्र सब कुंठित जैसे हो गये थे। इसके पूर्व जीवन में कभी भी उन राक्षसोंने करुणारस का स्वप्न भी नहीं देखा था। वे निर्दय हृदयवाले तो दूसरे के प्राणलेने में ही आनन्दित होते थे। इसी विश्वास पर रावण ने उन्हें अपनी सीमापर नियुक्त किया था। एक से एक सुन्दर नरमुनि गन्धर्व किन्नर उनके हाथ से मारे जा चुके थे। किन्तु यह सौन्दर्य का मूर्तिमान हि तपस्वी विग्रह उन नरभक्षी राक्षसों के फौलादी तन मन पर भी छा गया। प्रभु के रूपसुधा का पान करके सेना समेत खरदूषण थकित हो गया।

प्रभुविलोकि शर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी ॥

तव मन्त्रियों को पास बुलाकर खरदूषण ने कहा कि—आपलोग विचार दीजिये—

नाग असुर सुर नरमुनि जेते। देखे जिते हते हम केते ॥ किन्तु—

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखीनहिं असि सुन्दरताई ॥भैया इन्होंने—

यद्यपिभगिनी कीन्हि कुरूपा। (तद्यपि) बधलायक नहिं पुरुष अनूपा ॥

आप लोग इनसे जाकर कहो कि—आप पर मुझे दया लगती है। अस्तु—आप अपनी स्त्री हमको देकर वन में जायकर छिप जाओ। तभी तुम दोनों भाई जीवित घर लौट सकते हो। अन्यथा हम मार डालेंगे ॥ अ० का० १६ दो० ॥ मोरकहा तुम ताहि सुनावहु। तासुबचन सुनि आतुर आवहु ॥ दूतन कहा रामसन जाइ। सुनत राम बोले मुसुकाई ॥ कि—हमक्षत्री बन मृगया करहीं। तुम से खलमृग खोजत फिरहीं ॥ प्रभु के इस कठोर उत्तर को सुनकर पुनः हृदयमें क्रोध आने पर भी उन्होंने मार डालने की आज्ञा नहीं दी। उसने कहा कि इसको पकड़ लो। उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाये बिकट भट रजनीचरा। वे विचारे निशाचर करते ही क्या ? श्रीराम रूपमाधुरी ही तो उनके निशाचरत्व को भुलाकर उनमें प्रेमरस संचार करनेवाली प्रेरकशक्ति थी। महामायावी मारीच परभी तो इसी रूपमाधुरी ने मोहनीमन्त्र फूंक दिया था। जिससे वह प्राण खोने का संकट मोल लेकर भी उनके दर्शन को आकुल व्याकुल हो उठा था।

मन अतिहरष (किन्तु) जनाव न तेही। आज देखिहौं परमसनेही ॥

निज परमप्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।

श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं ॥
निर्वानदायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बशकरी ।
निजपानि शर सन्धानि सो मोहि बधिहि सुख सागर हरी ॥
मम पाछे धर धावत धरे शरासन बान ।
फिरिफिरि प्रभुहिं बिलोकिहौं धन्य न मो सम आन ॥२६॥

अनेक भैंसा खाकर घट (घड़ा) मद्य पान करनेवाले कुम्भकरण की बात सुनिये वह रावण से कहता है कि—

अब भरिअंक भेंटु मोहिं भाई । लोचन सुफल करौं मैं जाई ॥
श्यामगात सरसीरुहलोचन । बदनमयंक तापत्रय मोचन ॥
रामरूप गुन सुमिरत, मगन भयेउ छन एक ॥ लंका कां० ६३ ॥

क्यों न हो ? त्रिलोकी में जहाँ भी शोभा का आकर्षण है, वह रूप का चमत्कार है । सौन्दर्य की छटा है । वह नन्हीं सी सौन्दर्य सिन्धु के एकबिन्दु का भास मात्र है । औरों की तो बात छोड़िये, अब स्वयं इन्हीं नटनागर की एक झाँकी देख लीजिये । मणिमय अंगनाई में बालरूप में राघवेन्द्र घुटुरुवन दौड़ रहे हैं । अनायास शारदीय चन्द्रछवि को तिरस्कृत करनेवाली मुखचन्द्रछटा की छवि के प्रतिबिम्ब पर दृष्टि पड़ी। शोभाधाम उस बालछवि को देखकर आश्चर्य चकित से रह गये । अपने मन विचारने लगे कि-अहा यह बालक कितना सुन्दर है । यह तो मेरे मन को बरबस आकर्षित करता है । यह न जाने किस देव दानव मानव यक्ष किन्नर गन्धर्व का बालक है ? क्या यह मेरे साथ सख्यभाव स्थापित कर लेगा ? क्या मैं इसका सदा सान्निध्य प्राप्त कर सकूँगा ? इस सुन्दरता के सदन बालक के साथ बालक्रीड़ा में भला कितना आनन्दप्राप्त हुआ करेगा । इन्हीं विचारोंमें डूबे हुये राघवेन्द्र का मस्तक आनन्दातिरेक में झूम उठा । सोचने लगे कि-अरे यह नीलाभबालक भी मेरे समान ही हाथ पैर आदि अंगों का संचलन कर रहा है । तो क्या यह मेरा ही प्रतिबिम्ब तो नहीं है ? अरे क्या मैं सचमुच इतना सुन्दर हूँ ? सच्चिदानन्द आनन्दकन्द श्री रघुनन्दन अपनी ही रूपमाधुरी पर रीझकर स्वयं नाच उठे ।

रूपरासि नृप अजिर बिहारी । नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी ॥उ० कां० ७७॥

परब्रह्म स्वयं जिस रूपराशि पर रीझ रहा हो । उसके वर्णन में किसी भी

मर्त्य की लेखनी कहाँ सक्षम हो सकती है ? भला असीम का वर्णन कोई ससीम कर पायेगा ? यह विषय तो गणेश, शेष, शारदा, वेद पुराण सब की गति से परे है ॥

रूप सकहि नहिं कहि श्रुतिशेषा । सो जानै सपनेहुँ जेहि देखा ॥

श्रीरामरूपमाधुरी के पश्चात् पाठक श्री जानकी रूपमाधुरी का कुछ ही शब्दों में रसास्वादन करें । जिन भगवान् श्री राम जी के रूप सौन्दर्य को देखकर चराचर जगत मुग्ध होकर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है । वह श्री राम जी जिन श्री जानकी जी की रूपमाधुरी पर बिना मोल ही विके रहते हैं । इससे ही पाठक श्री जानकी जी की रूपमाधुरी का अनुभव करें । गोस्वामीजी ने लिखा है कि–गर्व करहु रघुनन्दन जनि मन माहिं । आपन रूप विलोकिय सिय जु कि छाँहि ॥ वरवै रामायण ॥ और रा० च० मा० वा० कां० में लिखा है कि—सियमुखशशि भये नैन चकोरा ॥ परिणामतः प्रात दर्शन के बाद शाम को संध्या करना भी भूलकर चन्द्रमा के व्याज से श्री जानकी जी के मुखचन्द्र माधुरी की प्रशंसा करने लगे ।

* प्राक्कथन *

"श्री जानकी स्तवराज" ग्रन्थ, रामभक्ति की मधुरोपासना का परम रहस्य ग्रन्थ है। प्रस्तुत ग्रन्थ रसिकाचार्यों का परम ज्ञेय एवं ध्येय है। विगत माधव मास में श्री मिथिलाधाम की मंगलयात्रा में, श्री अवध-धाम के, परम रसिक एवं उज्ज्वलरस के परमाराधक सन्त १०८ श्री सीताशरन जी महाराज ने श्री जनकपुर-धाम में उक्त ग्रन्थ की अर्वाचीन भाषा में इन पंक्तियों के लेखक से, टीका का अनुरोध एवं आदेश किया। प्रत्येक श्लोक के साथ विशेषार्थ देने का भी निर्देश किया। कार्य के निमित्त ग्रन्थ की दो पुरानी टीकायें भी श्रीरामानन्दाश्रम जनकपुर धाम से उपलब्ध करा दी गई। कियत काल-पर्यन्त ग्रन्थ चुपचाप प्रतिष्ठि रहे आये. किन्तु सन्त के दृढ संकल्प ने स्वयं प्रेरणा करके जिस किसी रूप में कार्य को सम्पन्न ही करा लिया। ग्रन्थ में, दास ने भाषा की दृष्टि से सर्वथा नूतन कलेवर दिया है। यत्र तत्र अन्वय में भी प्राप्त बुद्धि की प्रेरणा से परिवर्तन हुये है। पद्यानुवाद भी नये छन्दो एवं आधुनिक खड़ी भाषा मे हुये हैं।

ग्रन्थ की पूर्ति मे मेरे अभिन्न अन्तःकरन श्री मैथिली रमण दास (पं अम्बिकाप्रसाद जी त्रिपाठी व्याख्याता) एवं परम-रसिक,प्रोफेसर सुरेन्द्रकुमार जी (अजयगढ़) के प्रेमिक-अनुरोध बराबर प्रेरणा देते रहे। ग्रन्थ में मेरा अपना कुछ भी नही; मैं तो यंत्र मात्र की भांति रहा,और अब भी हूं मैं श्रीराजकिशोरी जू का हूं अतः समस्त मेरेपन में उनकानिसर्गसिद्ध- सत्व है समर्पण किसे, और किस अधिकार से यह जो कुछ भी है जैसा कैसा भी हैं श्री जू का तथा उनके जनों का हुं। कभी श्री चरणरति प्राप्त हो जाय, कोई ऐसा आशर्वाद दे दें

गणेश चतुर्थी
दि० ९-९-७५

श्री वैष्णव-पदाश्रितानां
किंकर:
अवध किशोर दास:

श्री रामः शरणं मम"

"श्री जानकी-स्तवराज,,

मूल- नांध्याये स्तवराजेन प्राकरूपां परात्पराम् ।
आह्लादिनीं हरेः कांचिच्छक्तिं सात्वत-सेविताम् ॥१॥

अन्वय- (अहं) प्रोक्तरूपाम् परात्पराम् आह्लादिनीम् सात्वतसेविताम हरे कांचित् शक्तिम् स्तवराजेन ध्याये ।

अनुवाद- मैं (श्रुति स्मृति पुराणादि में) वर्णित स्वरूप वाली, पर से भी पर आनन्द-स्वरूपिणी, सन्तजन सेवित, हरि की उस किसी शक्तिका इस स्तवराज द्वारा ध्यान करता हूँ ।

पद्यानुवाद-

आह्लादमयी सात्वतसेव्या; वेदों में गीत कीर्तिवाली ।
श्री हरि की किसी शक्तिका; मैं करता हूँ ध्यानभाग्यशाली ।
जो परम-परात्पर मोदमयी, जो पराशक्ति अनुभवगम्या ।
इस स्तवराज दिव्य द्वारा; कर रहा स्तवन हूँ रम्या ॥

विशेष- प्रोक्तरूपाम्- स्तवराजकार, स्तवन के पूर्व प्रोक्तरूपां कहकर श्री राज-किशोरी जू के ऐश्वर्य-वैभव एवं काय वैभव को श्रुति स्मृति एवं पुराणों इतिहासों तथा नाटकों में वर्णित होने का संकेत करते हैं । श्री राजकिशोरी जू के उभय-वैभव वैशिष्ट का निगदन पदे पदे प्रतिभासित हैं यथा

वेदों में- १- इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु । सा नः पयस्वतो दहामुत्तरामुत्तरां समांम ॥ ऋग्वेद ४।५७'७ अथर्व० ३।१७।४)

२- घृतेन सीता मधुना समक्ता; विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । सा नः सीते पयसाभ्या-ववृत्स्वोर्जस्वतो घतवत् पिन्वमाना॥ अथर्व ३ १७-६ ३- हेमाभयादिभुजयासव्य लिंकारयाचिता श्लिष्टःकमलधारिण्या पुष्टः कौशलजात्मजः (पूर्व रामताप०४- उत्पत्तिस्थिति संहारकारिणी सर्व देहिनाम् । सा सीता भवति ज्ञेयामूल प्रकृति संज्ञिता।। (रामोत्तरतापनी ५- जनकस्य राज्ञः सद्मनि सीतोत्पन्ना सा सर्वपराऽऽनन्दमूर्तिः गायन्ति मुन योऽपिदेवाश्च कार्य कारणभ्यामेवपरा तथैव कार्यकारणयो शक्तियस्य ।:विधात्री श्री गौरीणां सैव कर्त्री रामानन्द स्वरूपिणी सैव जनकस्य योगफलमिव भाति (अथर्ववेदपरिशिष्ट की श्रुति) ६- अर्वाचो सुभगे भवसीते वन्दामहेत्वा । यथा नःसुभगा सति यथा नः सुफलासति ॥ (अथर्व०४,५७,६) उपनिषदों मे-१-निमेषोन्मेष सृष्टि स्थिति संहारतिरोधानानुग्रहादि सर्वशक्तिसामर्थ्यात्साक्षाच्छक्तिरिति गीयते । श्री सीतोपनिषद) २-भूर्भुवःस्वःसप्तद्वीपा वसुमती त्रयोलोका अन्तरिक्षं सर्वेत्वयि यनिवसन्ति आमोदः प्रमोदो विमोदः सम्मोदः सर्वास्त्वंत्रि संधत्से । आञ्जनेयाय ब्रह्मविद्या प्र

धात्रित्वां सर्गे वयं प्रणममहे प्रणममाहे(श्री मैथिली महोपनिषद) काव्येतिहास में— वेदोपवृंहण-रूप इतिहासोत्तम आदिकाव्य श्री महाल्मीकि रामायण में तो आदिकवि की घोषणा ही हैं कि यह समस्त महाकाव्य" सीतायाश्चरितं महत्" हैं कुछ प्रमाण— १–अपराधिनो राक्षसियों को अभय प्रदान करती हुयी श्री जू श्री हनुमान जी से सुन्दरकाण्ड में कहती हैं–पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम । कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ।। एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा, उवाच धर्म सहितं हनुमन्न यशस्विनी । राज्य संश्रय वश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद वानरोत्तम । श्री राजकिशोरी जू ने कपोत का दृष्टान्त देते हुए आगे कहा कि अयं व्याघ्र समोपे तु पुराणं धर्म संहितः ऋक्षेण गीतः श्लोकों में तन्निबोध–प्लवङ्गम् । न परः पापमादत्ते परेषां पाप कर्मणाम । समयो रक्षित व्यस्तु सन्तश्चारित भूषण ।। श्री हनुमानजी को चिववध प्रतिज्ञा को सुनकर श्री जू ने उनकी इस प्रकार रक्षा की । २– भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः कि विवक्षया राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम् । प्राणिपात प्रसन्नाहि मैथिली जनकात्मजा । अलमेषा परित्रातं राक्षस्यो महतो भयात् ।। राक्षसियों का यह विचार स्वगोष्ठी गत ही रह गया श्री जू ने स्वयं ही उदघोष कर दिया– ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजय हर्षिता अवोचद्यादित्तथ्यं भवेयं शरणं हिवः । इस प्रकार सर्वत्र ही महानुभावों ने श्री विदेहराजतनया जू के मंगलमय स्वरूप की चर्चा की इसी लिए ग्रन्थकार प्रारम्भ में ही कहते हैं कि श्री राजकिशोरी जू प्रोक्तरुपा हैं ।

परात्पराम–भगवती श्री जानकी पर से भी पर तत्व स्वरूपा हैं । वागर्थ एवं जल-वीचि की तरह श्री सीता और श्री रामतत्व परस्पर अभिन्न है । समस्त आदिकाव्य में दुग्ध में घृत की भांति श्री राम परत्व में श्री सीता–परत्व अन्तर्निहित है ।

आह्लादिनीम्–प्रभु की 'सन्धिनी संवित त्वय्येका सर्वसंस्थितौ-विष्णु पुराण(१-१२-६६)

मूल– कीदृशः स्तव राजोऽयं केन प्रोक्तः सुरेश्वर ।
कथ्यतां कृपया देव, जानकीरूप–बोधकः ॥२॥

अन्वयः– सुरेश्वरः! जानकी रूप बोधकः अयम् स्तवराजः कीदृशः केन प्रोक्तः देव ! कृपया कथ्यताम् ।

अनुवाद– हे सुरों के स्वामी! श्री मिथिलेशराजनन्दिनी जू के स्वरूप का बोध कराने वाला यह स्तवराज कैसा हैं ? तथा यह किसके द्वारा कहा गया हैं ? हे देव कृपा करके इसका वर्णन करें ।

पद्यानुवादः– श्रुति ने पूछा हे संकर्षण हे देव सुरेश्वर बतलावें ।
कैसा यह स्तवराज इसे; किसने था गाया समझावें ॥
यह श्री सीता स्वरूप बोधक; इसको सम्पूर्ण सुना दीजे ।
होगी यह परम कृपा प्रभु की; अमृतरस दान दया कीजे ॥२॥

विशेष:- मूलतः यह स्तवराज भूतमनभावन भगवान महेश्वर के द्वारा गाया गया है। स्तोत्रों की परम्परा के अनुसार इसके श्रवण की जिज्ञासा भगवती श्रुति करती हैं और इसका वर्णन संकर्षण स्वयं शेष करते हैं। श्रुति एवं शेष की वार्ता के रुप में महर्षि अगस्त ने इस लीला रहस्य का अपनी संहिता में गायन किया।

मूल- ब्रवीमि स्तवराजं ते; श्री-शिवेन प्रभाषितम्। श्रुतं श्री वक्त्रतो दिव्यं; पावनानां च पावनम् ॥३॥

अन्वय:- श्री वक्त्रतः श्रुतम् श्री शिवेन प्रभाषितम् दिव्यम् पावनानां च पावनम् स्तवराजम् ते ब्रवीमि।

अनुवाद:- (श्री राघवेन्द्र के) श्री मुख से सुना हुआ एवं श्री शिव जी के द्वारा कहा गया दिव्य एवं पावनों को भी पवित्र करने वाले, इस स्तवराज को तुमसे कहता हूं।

पद्यानुवाद- वाले संकर्षण सुनो देवि; श्री महाशम्भुकृत गीत अहा श्री राघवेन्द्र श्री मुख-वर्णित; यह स्तवराज सु दिव्य महा॥ पावन को भी पावन ता दे; गा रहा बड़ी स्तवन-मंत्र। सुनना हो संयत सारभूत; रस-सिद्धि प्रदाता परमतंत्र ॥३॥

विशेष:- मूल स्तवन में श्री वक्त्रतः शब्द से श्री राघवेन्द्र के श्री मुख से वर्णित यह अर्थ लिया गया है क्योंकि आगे के श्लोक संख्या ७-८ में स्वयं श्री रघुनन्दन के द्वारा इस स्तवराज के द्वारा श्री स्तवन की बात का निर्देश स्पष्ट है।

मूल- चकाराराधनं तस्य मंत्रराजेन भक्तितः। कदाचिच्छ्रीशिवो रुपं ज्ञातुमिच्छुर्हरे परम् ॥४॥

अन्वय:---हरेः परम् रूपम् ज्ञातुम् इच्छुः श्री शिवः कदाचित् भक्तितः तस्य मंत्रराजेन आराधनम् चकार।

अनुवाद:- हरि (श्री राघवेन्द्र) के सर्वोत्कृष्ट-रूप को जानने की इच्छा रखने वाले, श्री शिव ने किसी समय, भक्तिभाव भावित होकर उनका (श्री राम का) मन्त्रराज के द्वारा आराधन किया।

पद्यानुवाद:- श्री शिवशङ्कर ने किसी समय अत्यन्त, भक्ति भावित उर से। श्री मंत्रराज द्वारा मंजुलः आराधन किया शास्त्र सुर से॥ श्री हरि का सर्वोत्कृष्ट रुप; भावना माध्य में पा जाऊं। इस भव्य भाव में हो निमग्न; सोचा कैसे रस सरिन्हाऊं॥४॥

विशेष:-"हरे: परमरूपम्," से यहाँ तात्पर्य व्यापक विराट निर्गुण निर्विकार, विभु एवं कूटस्थ स्वरूपों से नहीं, बल्कि इन सभी का परम कारण, रसिक-भक्तों के द्वारा आस्वाद्य स्वरूप से है। क्योंकि इस स्वरूप के ज्ञान का प्रयास 'भक्तित: किया जा रहा हैं। इस रूप का निरुपण तर्क शास्त्रियों के व्यायाम से साध्य नहीं है।

मूल- दिव्य वर्षशतं वेदविधिना विधिवेदिना। जजाप परमं जाप्यं; रहस्ये स्थित चेतसा। ॥५॥

अन्वय:- रहस्ये, विधिवेदिना; स्थितचेतसा, वेद-विधिना दिव्य वर्षशतम्, परम जाप्यम् जजाप।

अनुवाद :- एकान्त में, विधि को जाननेवाले (श्री शिवजी ने) स्थिरचित होकर वेद की विधि के अनुसार, दिव्य सौ वर्ष परमजाप्य (मंत्रराज) का जप किया।

पद्यानुवाद;-तब उन विधिज्ञ ने स्थिर चित; वेदों की वर्णित विधि द्वारा। शत -दिव्य-वर्ष तक किया मुदित उस परम जाप्य का जप प्यारा ॥ होकर एकान्त देश वासी; काशीवासी वे अविनासी। मन्त्राराधन में लीन हुये; मन्त्राथ-निझवर -विश्वासी

विशेष:- 'विधि-वेदिना 'शब्द का अर्थ साकेतवासी सन्त १०८ पं श्री रामवल्लभा शरण जी महाराज, "आचार्य से सीखी हुयी विधि द्वारा "करते हैं। मंत्र,वेद-विदित हो और आचार्योपदिष्ट हो, तभी उसका अनुष्ठान सफल होता है। श्री शिव जी ने मंत्र का आराधन, वेद-विधिना' अर्थात् वेद की विधि से आचार्यानुमोदन प्राप्त कर किया, यह भाव परिलक्षित होता है।

प्रसन्ना भूत्तदा देव: श्रीराम: करुणाकर:। मन्त्राराध्येनरूपेण, भजनीय: सतां प्रभु:॥६॥

अन्वय- तदा सतां भजनीय: प्रभु: करुणाकर: श्रीराम: देव: मंत्राराध्येन रूपेण प्रसन्न: अभूत ॥ अनुवाद- तब सज्जनों (भक्तों या श्री वैष्णव जनों) से भजनीय समर्थ, करुणा निधान देव श्री रघुनन्दन मंत्राराध्यरूप से प्रसन्न हुये ॥

हो गये प्रसन्न दयालु देव करूणाकर श्री मद्रघुनन्दन। आराध्यरूप मंत्रों वाले भजनीय भक्त जन उर चन्दन ॥ बोले हे भोला नाथ सुनो मैं हूँ प्रसन्न बतलाता हूँ। रसिकों की दिव्य दृष्टि पथ में मैं किस प्रकार से आता हूँ ॥

विशेष -"मंत्राराध्येन रूपेण "से प्रभु प्रगट हुये। यद्यपि जहाँ कामना है वहाँ विधि है। श्री शिव जी की तथा कथितकामना यद्यपि सात्विक है। फिर भी मंत्रानुष्ठान से प्रभु प्रगट हुये। ग्रन्थकार का मन मानो मचल उठा और उन्होंने निर्घोष किया कि

मन्त्रों के द्वारा आराध्य तो यह नील सुन्दर वपुष ही हैं। अन्य रूपों के दर्शन निमित्त मन्त्राराधन तो श्रम मात्र ही हैं। श्री राम जी ने कहा कि–

दृष्टुमिच्छसि यद्रूपं मदीयं भावनास्पदम। आह्लादिनीं परांशक्ति स्तूयाः सात्वत सम्मताम् ॥७॥

अन्वयः– यतमदीयं भावनास्पदं रूपं दृष्टुम् इच्छसि सात्वत सम्मतां में आह्लादिनीम् परां शक्ति स्तूयाः॥ अनुवाद– जो भव्य भावनास्पद मेरा, हैं रूप देखना चाहे रहे। जिसकी शुभ दर्शन इच्छा के वह पावन प्रेम प्रवाह रहे॥ उसके अवलोकन हेतु परम आहलादिनि पराशक्ति भूपा। सात्वत जन-सेवित देवी का आराधन करें भाव रूपा॥ विशेष– भावनास्पदं रूपं से तात्पर्य पंचरसों के क्रम से भावनीय स्वरूप से है। रसिकाचार्य शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य एवं श्रृंगार रसों के क्रम से किसी भी रस विशेष में स्थित होकर प्रभु के जिस स्वरूप की भावना करते हैं। वह स्वरूप ही भावनास्पद है। उस स्वरूप का दर्शन श्री जानकी जू की कृपा के विना होना सम्भव नहीं है। यथा– मिथिला विन नाते नहिं दर से। पढ़े लिखे समुझे समुझाये पोथी लादे खर से॥७॥

तदाराध्यस्तदारामस्तदाधीनस्तया विना। तिष्ठामि न क्षणं शंभो जीवनं परमं मम ॥८॥

अन्वयः– हे शम्भो! (अहम्) तत् आराध्यः तत् आरामः तत आधीनः तया विना क्षणम् न तिष्ठामि। मम परमं जीवनं (अस्ति)॥ अनुवाद—हे शिव जी! मैं उन्हीं (श्री जानकी जू) सहित ही आराध्य हूँ। वही मेरी आराम भूता हैं। उनसे रहित मैं क्षण भर भी सुख से नहीं रह सकता। मैं उन्हीं के आधीन हुं। क्यों कि वह मेरी परम जीवन हैं। हे शम्भु सदा आराधित मैं उनपराशक्ति के संग सत्य। मेरी वे महारामभूता उनके सँगथितिः मदीय नित्य॥ आधीन सदा ही मैं उनका मेरी वे सदा प्रान-भूता। क्षणमपि रह सकता हूं न कभी उनसे विहीन किसको छूता॥ विशेषः– रस निकुंज देश में सर्वेश्वर श्री रघुनन्दन को सर्वदा प्रिया–प्रेमवश्यता का स्वरूप स्पष्ट है। अन्यत्र भी श्री राघव कहते हैं – कि-पूर्णेन्दु सुन्दरमुखी चपलाय-ताक्षी, सा चेत कृपां न कुरुते मयि राजपुत्री। तत्किं फलं प्रवरया ममराजलक्ष्म्या, किम्वानया मृदुल यौवन सम्पदा च॥

(श्री जानकी गीतम्)

इत्युक्त्वादेवदेवेश वशीकरणमात्मनः। पश्यतस्य रूपं स्वमन्तर्धानं दधौप्रभुः॥९॥

अन्वयः– देवदेवेशः प्रभुः आत्मनः वशीकरणम, इत्युक्त्वा तस्य शिवस्य पश्यतः स्वम्

रूपम् अन्तर्द्धानं दधौ ।। अनुवाद-देवादि देवेश सर्व समर्थ प्रभु (श्री राम जी) ने अपने आत्मवशीकरण का उपाय इस प्रकार बतलाकर, उन शिव जी के देखते देखते ही अपने उस स्वरूप को अन्तर्हित कर लिया ।।

कहकर यों वशीकरण निजका वे देवों के देवेश परम् । श्री राम परमकरुणासागर, योगीन्द्र वृन्द के ध्येयचरम् ।। देखते देखते ही उनके, कर अन्तर्द्धान स्वरूप लिया । शंकर मानस को विद्युत सा, देकर प्रकाश जागरित किया ।। विशेषः- देवदेवेशः कहकर ग्रन्थकार ने श्री राघवेन्द्र का परत्त्व प्रतिपादित किया यथा -वालमीकीये- ब्रह्मास्वयम्भूश्चतुराननो वा त्रातुम न सकता युधिराम वध्यम् । इस प्रकार श्री राम जी सब देवताओं के स्वयं सिद्ध ईश हैं ।।

श्रुत्वारूपं तदा शंभुः तस्याः श्री हरि वक्त्रतः । अचिन्तयत्समाधाय मनःकारण मात्मनः ।। १० ।।

अन्वयः—तदाशंभुः तस्याः (श्री जानक्याः) रूपं श्री हरि वक्त्रतः श्रुत्वा आत्मनः कारणं मनः समाधाय, अचिन्तयत् ।। अनुवाद—तब श्री शंकर जी ने उन श्री मिथिलेश-नन्दिनी जू के रूप को श्री राघव के मुख से सुनकर अपने कारण रूप मन को एकाग्र कर ध्यान प्रारम्भ किया ।।

उन पराशक्ति का श्री मुख से, सुनके स्वरूप मंगलकारी । अपने कारण स्वरूप मन को, केन्द्रित कर बैठे त्रिपुरारी ।। करने लग गये स्वरूप ध्यान, परमाराध्या सुख-कारी का । आह्लादिनि परम कृपा रूपा, रस की रसिका दुखहारी का ।। विशेष- "आत्मनः कारणं मनः व्यक्ति का मन ही उसके सर्वविधि व्यक्तीकरण का कारण है यथा- मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः" अतः श्री शिव जी ने उस मन को एकाग्र कर ध्यान करना प्रारम्भ किया ।।

अस्फुरत्कृपया तस्यरूपं तस्याः परात्परम् । दुर्निरीक्ष्यं दुराराध्यं सात्वतां हृदयङ्गमम ।। ११ ।।

आश्रयं सर्वलोकानांध्येयं योगिविदां तथा । आराध्यं मुनि मुख्यानां सेव्यंसं-यमिनां सताम् ।। १२ ।।

अन्वयः- दुर्निरीक्ष्यं सात्वतां हृदयंगमम् सर्वलोकानां आश्रयम् योगिविदाम्ध्येयं, मुनि मुख्यानां आराध्यम् संयिनां सतांसेव्यं, तस्याः (जानक्याः) परात्परं रूपं कृपया तस्य (शिवस्य) अस्फुरत । अनुवाद- दुलर्भ दर्शना दुराराध्या जिनकी आराधना कठिन हैं भक्त जन हृदय निवासिनी सर्वलोकाश्रयभूत योगिवर्यं जनों को ध्येया मुनिमुख्यों की

आराध्या, जितेन्द्रियों की सेव्या श्री विदेहराजनन्दिनी जू का परात्पर स्वरूप उन्हीं की कृपा से श्री शिव जी के समक्ष प्रत्यक्ष प्रगट हो गया।

जो दुर्निरीक्ष्य जो दुराराध्य, जो श्री वैष्णव जन भावनीय। जो सर्व लोक आश्रय भूता, योगीन्द्रध्येय मुनि माननोय ।। संयमियों की सन्तत सेव्या, जो रूप परात्पर द्युतिकारी। स्फुरित होगया तव समक्ष, होगये मगन डमरू धारी ।।

विशेषः–"दुर्निक्ष्यं दुराराध्यं" कह कर ग्रन्थकार ने श्री जनक राजकिशोरी जू की महामहिमा का संकेत किया। यथा–जासु कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितवन सोय। बड़े बड़े देवेन्द्र मुनीन्द्र बृन्द के द्वारा वदिन्त और आराधित हुई भी जिन श्री जू का दर्शन उन्हें सुलभ नहीं होता। वे श्री राजकिशोरी जो प्रगट हुई। भाव यह है कि यह श्री तत्त्व साधन साध्य नहीं। अपितु कृपैक साध्य है। "दुर्निरीक्ष्य" पद से उनके दर्शन की दुर्लभता एवं दुराराध्य पद से उनकी असाध्यता प्रगट हुई ।।१२।

दृष्ट्वाश्चर्यमयं सर्वरूपं तस्याः सुरेश्वरः। तुष्टावजानकीं भक्त्या मूर्तिमतीं प्रभाविनीम् ।।१३।।

अन्वयः–सुरेश्वरः (श्री शिवः) तस्याः (जानक्याः) आश्चर्यमयं सर्वं रूपं दृष्ट्वा भक्त्या मूर्तिमतीम् प्रभाविनीं (जानकीम) तुष्टाव ।। अनुवाद–सुरेश्वर श्री शिव जी ने उन श्री जानकी जी आश्चर्य पूर्ण सम्पूर्ण रूप को देख कर, मूर्तिमती एवं प्रभाव शालिनी श्री जू को भक्ति पूर्वक स्तुति करने लगे ।। यह देख सुरेश्वर श्री शंकर, आश्चर्य पूर्ण श्री अंग सुभग। नख से शिख तक द्युतिमन्त परम, पुलकाये मंगलमय रग रग ।। सुषमा वह मूर्तिमती लखते, गूँजे डमरू के नव्य घोष। हो गये प्रार्थना में तत्पर, खुल गये भाव के भव्य कोष ।। विशेष-नख से शिख तक आश्चर्य पूर्ण, उनका वह मधुर स्वरूप देख। देवेश्वर उन शिव शंकर के, मुदगये नयन निज भाग्य लेख ।। फिर परम भक्ति की परवश्या, उन प्रभामई सुकुमारी का। करने स्तवन पुनीत लगे, इस भाँति विदेह कुमारी का ।। १३ ।। स्तुति-प्रारम्भ—

वन्दे विदेह तनया पद-पुण्डरीक, कैशोर सौरभ समाहृत योगिचित्तम्। हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंस सेव्यं; सन्मानसालिपरिपीतपराग पुञ्जम् ।। १४।।

अन्वयः–(अहं) कैशोर सौरभ समाहृत योगिचित्तम् त्रितापं हन्तुं अनिशं मुनिहंस सेव्यं सन्मान सालिपरिपीतपराग–पुञ्जम् विदेहतनया पद-पुण्डरीकं वन्दे ।।

अनुवाद–अपने नित्य कैशोर सौरभ से (नित्य नूतन सुगन्ध से) योगिजनों के चित्त को अपहरण करने वाले, त्रिताप अपहरण के निमित्त सर्वदा परमहंस पद प्राप्त मुनियों से संसेव्य, भक्तजनमानस भ्रमरावलि द्वारा पीतपराग वाले (अर्थात भक्तों के मन रूपी

भ्रमरों ने जिनके पावन पराग का पान किया है) श्री विदेहराज नन्दिनी जू के चरण कमलों की (मैं शंकर) बन्दना करता हूँ ॥

कैशोर सुसौरभ से सन्तत, जो आहृत करते योगिचित्त । त्रैताप विनाशन हेतु सदा, मुनिहंसजनों के सेव्य वित्त ॥ वैष्णव जन मानस भ्रमरों से सन्तत परिपीत पराग पुञ्ज । बन्दन करता वैदेही के ऐसे पद पावन दिव्य कञ्ज ॥ विशेष—सन्मानसालि परिपीत पराग-पुञ्जम् कहकर ग्रन्थकार ने श्री जू के पद-पंकजों को रस पराग का परम अधिष्ठान निर्दिष्ट किया । रसिक जन मन भ्रमर तो उस पराग का पान करते ही हैं । स्वयं श्री रसिक शेखर भी इस रस पराग के अनुराग में भ्रमर बन जाते हैं । रसिकों का तो अनुभव सिद्ध सत्य है कि-श्री जनकलली के पदकमल जबलगि उर नहि बास । राम भ्रमर आवत नहीं तब लौं ताके पास ॥१४॥

पादस्य यावकरसेन तलं सुरक्तं, सौभाग्य भाजनमिदं हि परं जनानाम् ।
युक्तीकृतं सु भजतां तवदेवि नित्यं; दत्ताश्रयं सुमनसां मनसानुरागम् ॥१५॥

अन्वयः—हे देवि ! तव पादस्य तलं, यावकरसेन सुरक्तं हि इदं जनानाम् परम सौभाग्य भाजनम । सुमनसां नित्यं सुभजतां (तव) दत्ताश्रयं, मनसा अनुरागं युक्तीकृतम् अनुवाद हे देवि ! आपके श्री चरणतल, यावक रंजित होने के कारण अत्यन्त अरुणारे हैं । अवश्य ही यह भक्त जनों के परम सौभाग्य अधिष्ठान हैं । सुन्दर मन से नित्य भजन निरत प्रेमी जन आपके आश्रय प्रदत्त मनके द्वारा उनमें अनुराग करते हैं॥ अरुणाभ परम पद के तल की, यावक रसरंजित रम्य कान्ति सौभाग्यं सुभाजन भक्तों की अरुणाई देती पुण्य शान्ति । सद् भजन निष्ठ जनके मन से, भजनीय चरण पंकज कोमल । मानों अनुराग अरुणिमा से, होगये अरुण तरवे पद तल ॥ विशेष-'मनसानुरागम्" श्री राजकिशोरी जू के श्री चरणतल स्वाभाविक ही अरुण हैं । स्तवकार उस अरुणिमा में प्रेमी भक्तों के अनुराग की उत्प्रेक्षा करते हैं । भाव यह है कि यह लालिमा श्री चरणों के अनुरागियों के अनुराग को लाली है, जो महावर के रूप में शोभित है । साहित्य में अनुराग का रंग भी लाल माना गया है ।

पादाङ्गुली नखरुचिस्तव देविरम्या; योगीन्द्रवृन्द मनसा विशदा विभाव्या ॥१५॥
त्रैताप क्लान्त्युपशमाय शशाङ्ककान्तिः; दोषेण किं समुपयाति तुलां युतासा ॥१६॥

अन्वयः—हे देवि ! योगीन्द्र वृन्द मनसा विभाव्या, तव पादाङ्गुली नख रुचिः विशदा, रम्या, किम् दोषेण युत सा शशाङ्क कान्ति, त्रैताप क्लान्त्युपशमाय तुलामि याति (नयातिइत्यर्थः) अनुवाद-हे देवि ! श्रेष्ठ योगियों के मन से सेवित आपके चरणांगुलि नखों की कान्ति स्वच्छ और अत्यन्त सुन्दर है । क्या दोष से युक्त वह चन्द्र कान्ति

त्रिताप विनाशन के वैशिष्ट के सम्मुख कभी भी समानता को प्राप्त हो सकती है। अर्थात् नहीं ॥ योगीन्द्रवृन्द मानस विभाव्य, पादांगुलि नख की नव्य कान्ति। चन्द्रद्युति कहाँ तुल्य होगी, त्रैताप हर्तृ लख दिव्य शान्ति ॥ विशदा रम्या प्रकाश निलया, जब मंजु छटा छहराती है। शशिकान्ति हो दोषमयी, सकुचाती छिप छिप जाती है ॥ विशेष–'त्रैताप क्लान्त्युपशमाय' भाव यह कि–श्री जू के पद नख में चन्द्र-कान्ति से अधिक, रम्यता, निर्मलता और प्रभा तो है ही दैहिक; दैविक भौतिकतापों के भी उपशमन का जो वैशिष्ट है उसकी तुलना में तो बेचारा चन्द्र कभी आही नहीं सकता "पदनखद्युति विनमित चन्द्रे निजपतिपद परिचरण वितन्द्रे" कहकर सर्वत्र ही पद नखों की कान्ति से चन्द्र को लज्जित कहा गया है ॥

मञ्जीर धीर निनद कलहंसकाली, हा साय सा भवति भावयति त्वदीय।
किञ्चापरं रसिकमौलि मनोनियन्तुः दृष्टं मया परमकौशलमत्र तस्य ॥१७॥

अन्वयः–हे देवि ! सा कलहंसकाली, त्वदीयं मञ्जीर धीर निनदं भावयदि हासाय भवति। रसिकमौलि मनः नियन्तुम् किञ्च अपरम अत्र मया तस्य परम कौशलम् दृष्टम् ॥ अनुवाद–हे देवि ! सुन्दर हंसों की पंक्ति, आप के नूपुरों के गम्भीर ध्वनि की समानता करती हुई उपहास की पात्र होती है, रसिक मौलि (श्री रघुनन्दन) के मनका नियमन रूप कृत (इन नूपुरों में) यहाँ मैंने कुछ और परम चातुर्य देखा ॥ करने चलती कलहंस पंक्ति मंजीर धीर ध्वनि की समता। तब सहज हास्य योग्या होती, उसकी समता की अक्षमता ॥ कर लेती रसिक मौलि मनका, इसकी ध्वनि सहज नित्य नियमन। कलकौशल और लखा इनमें, पायेगो हंस पंक्ति क्या कन ॥ विशेष–'दृष्टं मया परं कौशल मत्रतस्य' भाव यह की हंसों की पंक्ति इन नूपुरों की शुभ्रता में भले ही समता करले, किन्तु इनकी ध्वनि को श्रवण करते ही वह उपहास बन जायेगी। हंस पंक्ति की ध्वनि भी यदि रम्य होती, तो भी इनकी ध्वनि में श्री रसिकेश्वर के जो वशीकरण की जो वैशिष्ट है उसकी तुलना तो कदापि हो ही नहीं सकती थी ॥१७॥

सिद्धीश बुद्धिवर रञ्जन गूढ गुल्फौ; पादारविन्दु युगलौ जनतापवर्गौ।
विन्दन्ति ते त्रिभुवनेश्वरि भाव सिद्धिं; ध्यायन्ति ये निखिल सौभगभानु भाजौ ॥१८॥

अन्वयः–हे त्रिभुवनेश्वरि ! ये सिद्धीश बुद्धिवर रञ्जन गूढ गुल्फौ जनतापवर्गौ, निखिल सौभग भानु भाजौ ते पादारविन्द युगलौ ध्यायन्ति, ते भावसिद्धि विन्दन्ति ॥ अनुवाद–हे तीनों लोकों की स्वामिनि ! जो (व्यक्ति) श्रीराम जी की श्रेष्ठमति को प्रसन्न करने वाले, गूढ़ गुल्फों से युक्त, जनों के (भक्त जनों के) ताप के विनाशक,

तथा सम्पूर्ण सौन्दर्य के सूर्यरूप, आपके दोनों चरणारविन्दों का ध्यान करते हैं, वे भाव की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ जो ताप विनाशक भक्तों के, सिद्धीशबुद्धि रंजनकर्ता । मंजुल गुल्फों से युक्त युगल, पादारविन्द दुख के हर्ता ॥ उन परम सुसौभग भानुरूप, चरणों का जो ध्याया करते । हे हे त्रिभुवन की महाईश, वे भाव सिद्धि पाया करते ॥ विशेष-"निखिल सौभग भानु भाजौ," पद का अर्थ सन्त श्री गोविन्द दास जी सम्पूर्ण सौन्दर्य के सूर्य श्री राम जी की सेवा में रहने वाले करते हैं । जब कि अनन्त श्री पं० श्री रामवल्लभाशरण जी महाराज 'सम्पूर्ण सौन्दर्य के प्रकाश स्थान" यह अर्थ करते हैं । इसी प्रकार जनतापवर्गौ पद की व्याख्या प्रथम सन्त (जनता अपवर्गौ) भक्तजनों के मोक्षरूप करते हैं । जबकि श्री पं० जी महाराज (जनताप वर्गौ) भक्तजनों के ताप विनाशक करते हैं । प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को द्वितीय भाव ही अभीष्ट है ॥१८॥

हेमाभिवर्द्धित विभूषण भूषितं ते; त्रैलोक्य तेज इव मञ्जुल पुञ्ज भूतम् ।
भावस्मि सुन्दरि पदं सरसीरुहाभं, भीताभयप्रदमनन्त मनोभिध्येयम् ॥१९॥

अन्वयः-हे सुन्दरि ! (अहं) हेमाभिवर्द्धित विभूषण भूषितम् त्रैलोक्य तेजइव मञ्जुल पुञ्ज भूतम्, सरसीरुहाभम् भीताभयप्रदम् अनन्त मनोभिध्येयम् ते पदम् भावास्मि (भावितुं इच्छामि) ॥ अनुवाद-हे सुन्दरि ! (मैं) सुवर्ण रचित विभूषणों से शोभित तीनों लोकों के (पुञ्जीभूत) तेज की भाँति सौन्दर्यमय कमल की सी आभा वाले (संसार शोक) भयभीत प्राणियों के अभय प्रदाता अनन्त (श्री राम जी) के मन के द्वारा ध्येय, आपके युगल श्री चरणों की भावना करने की इच्छा करता हूँ ॥ उन हेम भूषणों से भूषित, त्रैलोक्य तेज के पुञ्जभूत । श्रीराघवेन्द्र के मनोध्येय, कमलारुण मंजुल परम पूत ॥ भवताप तीव्र के अभयदानि, चरणों को उर में धार रहा । हे सुन्दरि ! उन पद कंजों को, भावना भव्य स्वीकार रहा ॥ विशेष-"अनन्त मनोभिध्येयम्" श्री प्रिया जू के पद कमल प्राणवल्लभ के भी ध्येय हैं तभी तो रसिकाचार्य जन कहते हैं कि-विहरत सदा रसिक रघुनन्दन, लली चरन रज परसे । यही जानि सुखमानि बसी सब, कंचन वन रस अरसे ॥ (श्री युगल प्रिया जी) ॥१९॥

चक्राभहारि सुनितम्ब युगं भवत्या, ध्येयं सुधीभिरनिशं रसनाभिपक्तम् ।
ध्यानास्पदं रघुपतेर्मनसोमुनीनां, भावैकगम्यममरेश नताङ्घ्रिपद्मे ॥२०॥

अन्वयः-हे अमरेश नताङ्घ्रिपद्मे ! (अहम्) चक्राभहारि, सुधीभिः अनिशं ध्येयम् रसनाभिपक्तम् रघुपतेः मनसः ध्यानास्पदम् मुनीनां भावैकगम्यम् भवत्याः सुनितम्बयुगं भावयामि ॥ अनुवाद-हे इन्द्रादिकों से नमस्कृत चरण कमल वाली (अहम्) मैं चक्र

को हरण करने वाले, बुद्धिमानों द्वारा, अहर्निशि ध्येयः क्षुद्रघंटिका से युक्त, राघवेन्द्र जू के ध्यान के स्थान, मुनिजनों के केवल भाव करने योग्य, आपके युगल नितम्बों की (विशुद्ध भाव से) भावना करता हूँ ॥ अमरेश नतांघ्रि युग्मपद्म ! जो सुधावृन्द के ध्येय रूप । चक्रद्युतिहारि नितम्ब युगल, रसना से मण्डित अति अनूप ॥ ध्याना-स्पद राघवेन्द्र मनके, जो श्री मुनीन्द्रजन भाव गम्य । भावना कर रहा मैं उनको, वे वदेही के अंगरम्य ॥ विशेष—"चक्राभहारि" पद की व्याख्या में अनन्त श्री पं० राम वल्लभाशरण जी महाराज चक्र की गोलाई को हरन करने वाले यह अर्थ करते हैं ॥२०॥

कौशेयवस्त्र परिणद्धमलंकृतं तेः कार्तस्वराशनिमणि प्रवरप्रवेकैः ।
रत्नोत्तमै रसनया ग्रहकान्तिमद्भिर्भास्वन्ति निर्मिततया स्वधियन्ति मध्यम् ॥२१॥

अन्वयः- (हे देवि ! भक्ताः) कौशेयवस्त्र परिणद्धम् कार्तस्वराशनिमणि प्रवरप्रवेकै ! अलंकृतम् ग्रहकान्तिमद्भिः रत्नोत्तमैः निर्मिततया रसनया भास्वन्ति, ते मध्यम स्वधि-यन्ति ॥ अनुवाद— हे देवि ! भक्तजन कौशेय (रेशमी) वस्त्र से सुशोभित स्वर्ण एवं हीरक प्रभृति मणियों से अलंकृत, कान्तिमान ग्रहों के समान श्रेष्ठ रत्नों से विरचित, (बने हुये) रसना (कटि अलंकरण जो क्षुद्र घंटिकाओं से निर्मित होता है) से युक्त, सूर्य की भाँति दीप्तिमान, आपके कटिदेश को ध्यान में भावना करते हैं ॥ कौशेय-वसन परिणद्ध अहो, हीरक सुवर्ण मणि की शोभा । अतिकान्तिमन्त नक्षत्रोंवत, रत्नों की रचना मनलोभा ॥ इस भाँति भानु सा दीप्तिमंत, भवदीय सु मंजुल कटि-प्रदेश । हे देवि ! रसिक जन के मनका, होता सु ध्यान से ही प्रवेश ॥ विशेष—'ग्रह-कान्तिमद्भिः,' कटि प्रदेश को अलंकार-भूता रसना रत्नों से विनिर्मित है । वे रत्न गगन मण्डल के नक्षत्रों की भाँति कान्तिमान हैं, यह भाव है ॥२१॥

अश्वत्थ पत्रनिभमम्ब धियोदरन्ते; भाव्यं भवाब्धितर केवल काल नाशे ।
भूयो न भावि जननी जठरे निवासः स्तेषां मनोधरणि जेऽत्र सुलग्नमासीत् ॥२२॥

अन्वयः—हे भवाब्धितरि ! हे केवल कालनाशे, हे धरणिजे, अम्ब, अश्वत्थ पत्र-निभम धियाभाव्यम ते (तव) उदरं येषां मनः अत्र सुलग्नम आसीत् तेषां जननी जठरे निवासः भूयः न भावि ॥ अनुवाद—हे संसार सिन्धु की तरणि स्वरूपिणी (नौका रूप) हे एकमात्र काल की विनासिनी, हे भूमिनन्दिनी ! हे माँ आप का श्री उदर पीपल पत्र की भाँति [सुचिक्कन] एवं सूक्ष्म तथा सद्बुद्धि से ध्यान करने के योग्य हैं । जिनका [भक्तों का] मन यहाँ एकाग्रता पूर्वक लग गया, उनका पुनः माता के गर्भ में निवास नहीं होगा । अर्थात आवागमन छूट जायेगा ॥ हे भवसमुद्र तरणी रूपे, हे काल विनासिनी भूमिसुते । अश्वत्थपत्र निभ उदरमयी, हे विधि हरिहरादि

शक्ति नुते ॥ सद्बुद्धि भाव्य तव उदर देश, जिनके मनमें निवास पाता । जननी का जठर निवास अहो, उनका सदैव को मिट जाता ॥ विशेष—"जननी जठरे निवासः" भाव यह कि जिनका सूक्ष्म मन श्री जू के चिन्मय वपुष के ध्यान में लग गया, उनकी भौतिक वासनायें नष्ट हो जाने के कारण पुनर्जन्म होना सम्भव नहीं ॥२२॥

नाभीह्रदं हरिमनः करिणः कृशांशोः पुष्टिप्रदं प्रचलितं त्रिवली तरङ्गम् ।
राजीसुशैलनिभं भ्रमिभूतरोम्णां, शान्त्यैतव त्रितपतामतिभावयामः ॥२३॥

अन्वयः—(हे देवि वयम्) त्रितपतां शान्त्यै हरिमनः करिणः कृशांशः पुष्टिप्रदं त्रिवली तरङ्गम् प्रचलितम् भ्रमिभूतरोम्णाम् राजीसुशैलनिभं तव नाभी हृदयम् अतिभावयामः ॥
अनुवाद—हे देवि ! हम सब तीनों तापों की शान्ति के लिये, श्री रघुनन्दन के मनः करि की (मन रूपी हाथी की) कृशता को पुष्टि देने वाले, त्रिवली तरंग से युक्त (जिनमें त्रिवली रूपी तरंगे चल रही हैं) तथा सेवार की भाँति रोमावर्ति से सुशोभित (जहाँ आवर्त रूप रोमों की पक्तियाँ हैं) ऐसे नाभिकुण्ड की अतिशय भावना करते हैं ।
आवर्त रोम्ण युत नाभि कुण्ड, शैवल समान शोभा वाली । हरि के कृशकाय मनो करि की, पीनत्व प्रदात्री छविवाली ॥ त्रिवली तरंग से जो चंचल, श्री नाभिकुण्ड को हे माता । त्रैताप बिनासन हेतु आज, संयमित चित्त से मैं ध्याता ॥ विशेष—रसिकाचार्य अनन्त श्री रामचरण दास जी (श्री करुणासिन्धु जी) महाराज नाभि देश-सुषमा का वर्णन कितनी रससिक्त वाणी में कर रहे हैं ॥ "नाभि दिव्य द्विजराज, अमीह्रद अलि जिमि । रबि नन्दिनि छवि भ्रमर, करैं छवि तहँ किमि ॥ त्रिवलि रेख छबि सीवं सूत्र किंकिनि फबि । मनहुँ महा छवि देखि, हँसति त्रिभुन छवि ॥" प्रस्तुत पंक्तियाँ अपने आप में पूर्ण एवं रस की उद्‌गाता हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि मूल श्लोक का सटीक अनुवाद ही रस सिद्ध सन्त की वाणी में उतर आया है ॥२३॥

नीलाभकञ्चुकमणीन्द्र समूह निष्कैः वक्षोजयुग्ममति तुङ्ग मलंकृतन्ते ।
हारैर्मनोहर तरैस्तरुणि ! क्षितीजे; सौन्दर्य वारिनिधि वारितरङ्गसङ्गम् ॥२४॥

अन्वयः—हे क्षितीजे ! हे तरुणि ! (वयम्) नीलाभ कञ्चुक मणीन्द्र समूह निष्कैः मनोहर तरैः हारैः अलंकृतं अति तुंगं सौन्दर्य वारिनिधि वारितरंग संगम् ते वक्षोज युग्मम् (भावयामः) अनुवाद—हे भूमि जे ! हे तरुणि ! हम नीलकान्ति वाली कञ्चुक और श्रेष्ठमणिसमूह से रचित निष्कों (कण्ठाभूषणों) एवं परम मनोहर हारों द्वारा सुशोभित अति ऊँचे सौन्दर्य रूपी समुद्र के तरंग-संगमवत् आपके युगल वक्षोज का हम ध्यान करते हैं ॥ नीलाभकंचुकी से एवं, गुम्फित मणीन्द्र युत कंठमाल

अति रम्य महाई सुहारों से, भूषित सुतुंग वक्षोज जाल ॥ सौदर्न्य वारिनिधि लहरों के, संगम समान शोभाशाली। हे तरुणि मणे! हे भूमि सुते! करते हम ध्यान प्रेमपाली ॥ विशेषः—"वक्षोज युग्ममति" भावना के जिस स्तर में आरूढ़ हो, रसिक मानस श्री प्रिया प्रीतम के शृंगार महोदधि का अवगाहन करता है। वहाँ दृष्ट एवं श्रुत विषय गंध तो दूर "ताको नीरस ज्ञान योग तप छोई लागे" की स्थिति होती है। रसिकाचार्य श्री हित हरिवंश महाप्रभु की राधा सुधानिधि के इसी सन्दर्भ में ये 'बिन्दु' अवगाह्य हैं। महाप्रभु श्री जू के युग्म वक्षोज का कितने श्रद्धा से नमन करते हैं। क्रीड़ासरः कनक पंकज कुड्मलाय, स्वानन्द पूर्ण रस कल्पतरोः फलाय। तस्मै नमो भुवन मोहन मोहनाय, श्री राधिके! तव नवस्तन मण्डलाय ॥ श्री छन्दसंख्या ३३,३४;३५ एवं ३६ विशेष रूप से अवलोकनीय हैं ॥२४॥

बाहू मृणाल मद खण्डन पण्डितौ ते, भीताभयप्रद वदान्यतमौ जनानाम्।
रुक्माङ्गदाङ्कित बिटङ्कितमुद्रिकौ तौ; हैरण्य कङ्कण धृतानलयौ भजामः ॥२५॥

अन्वयः—(हे देवि वयम्) मृणालमद खण्डन पण्डितौ, जनानाम् भीता भयप्रद-वदान्य तमौ, रुक्माङ्गदाङ्कित बिटङ्कित मुद्रिकौ, हैरण्य कङ्कण धृतौ ते तौ बाहू भजामः ॥ अनुवादः—हे देवि! हम मृणाल दण्ड के मद खण्डन में पण्डित (दक्ष-प्रवीण) भक्तजनों को संसार भय से अभय करने में अत्यन्त उदार स्वर्ण कंकण एवं वलय (चूड़ियाँ) विभूषित आपकी युगल बाहु का भजन करते हैं॥ पंडित खंडन मृणाल मद के, भक्तों के सदा अभयकारी। भव भय प्रभीत जग जीवों के, जो दुखहर्ता मंगल कारी ॥ टंकित रुक्मागंद-युक्त स्वर्ण, चूरी सु मुद्रिका मनहारी। हे देवि ध्यान पथमें आवें, वे युगल बाहु सब सुखकारी ॥ विशेष—"मृणाल मद खंडन पंडित" शब्द से भुजाओं का परम सौकुमार्य एवं "भीताभयप्रद" पद से उनका सर्व सामर्थ्य व्यक्त हुआ। भगवती श्री सीता जी का सर्व सामर्थ्य गायन करते हुये उपनिषद् कहते हैं कि निमेषोन्मेष सृष्टिस्थिति संहारतिरोधानानुग्रहादि सर्वशक्ति सामर्थ्यात्साक्षाच्छक्तिरितिगीयते। (श्री सीतोपनिषद्) ॥२५॥

कण्ठं कपोततरुणीगलकान्तिमोषं; भूषैर्नैकविध भूषितमम्ब तुभ्यम्।
ध्यायेम मानस विशुद्धिकृते कृपालो; योगीन्द्र भावित पदे शमदेशरण्ये ॥२६॥

अन्वयः—हे कृपालो! हे योगीन्द्रभावितपदे! हे शमदे! हे शरण्ये! हे अम्ब! (वयम्) मानस-विशुद्धिकृते, कपोत तरुणीगलकान्ति मोषम् भूषैर्नैकविध भूषितम् तुभ्यं (तव कण्ठं) ध्यायेमः ॥ अनुवाद-हे कृपालु! हे योगीन्द्र जनभावित चरणे! हे शान्ति प्रदात्री! हे शरण्ये! हे माँ! हम मन की शुद्धि के निमित्त कपोती की कण्ठ

कान्ति के अपहारक, विविध विभूषणों से विभूषित, आपके कण्ठ-देश का ध्यान करते हैं ॥ हे योगिवृन्द भावित चरणे, हे परम शरण्ये ! हे माता । तव विविध भूषणों से भूषित, श्री कंठ देश को मैं ध्याता ॥ जो कंठ कपोत तरुणि की भी, ग्रीवा की शोभा हरण करे: हे शमदे ! कंठ त्वदीय वही मेरे मानस का वरण करे ॥
विशेष – "मानसविशुद्धिकृते" कहकर स्तवकार ने श्री राजकिशोरी जू के कंठ-देश का ध्यान विशेष रूप से मनः शुद्धि कारक निरूपित किया ॥२६॥

वक्त्रेन्दुमिन्दु चय खण्डित मण्डितांशु, खण्डांश पण्डित मनः परिदण्डिताशम्।
सन्मानसाब्ज मुदितद्युतिदं वरेण्यं;रामाक्षितारक चकोरमहं भजेते ॥२७॥

अन्वयः – अहं इन्दुचय खण्डित मण्डितांशुम् खण्डांश पण्डित मनः परिदण्डिताशं सन्मानसाब्ज मुदितद्युतिदं, वरेण्यं, रामाक्षि तारक चकोरम् भजे ॥ अनुवाद—मैं चन्द्रज्योत्स्ना के मद-विखण्डक, किरण-मण्डित पण्डितों के (न्यायशास्त्र के पण्डितों के) मनको परिदण्डित करने वाले, भक्तजन मानस कमल के आनन्दमय प्रकाशक, वरेण्य (वरण करने योग्य) श्री रघुनन्दन नेत्र चकोरों के चन्द्र रूप आपके श्री मुख का ध्यान करता हूँ ॥
मंजुल सुज्योत्स्ना से मण्डित परिदण्डित करता पण्डित मन । रामाक्षि सुतारक बनि चकोर, लखते जिनका श्री चन्द्रवदन ॥ चन्द्रद्युति होती म्लीन चूर सज्जन मन कैरव खिल जाते । वक्त्रेन्दु दिव्य वह ध्याता मैं मिथिलेशलली का हर्षाते ॥
विशेष – "पण्डितमनः परिदण्डिताशं," पंडित-मन का तात्पर्य न्यायशास्त्र के पंडितों का मन" यह अर्थ करते हुये अनन्त श्री पं० रामवल्लभाशरण जी महाराज कहते हैं कि न्यायशास्त्र में अनुमान करते करते जब कहीं, श्रीकिशोरीजीके मुखचन्द्रको उन्होंनें देख पाया उस समय वे न्यायशास्त्रज्ञ यही कहते हैं कि हमनें उस न्याय में व्यर्थ ही परिश्रम किया ॥२७॥

ताम्बूलराग परिरञ्जित दन्तपङ्क्तिः; प्रद्योतिताधरमधः कृतबिम्बरागम् ।
ईषत्स्मितद्युति कटाक्ष विकाशिताशं; वक्त्रं परेश नयनास्पदमाभजे ते ॥२८॥

अन्वयः—(हे देवि ! अहं) ताम्बूलराग परिरञ्जित दन्त पन्क्ति प्रद्योतिताधरम अधः कृत बिम्बरागम् ईषत्स्मित द्युति कटाक्ष विकाशिताशम् परेशनयना स्पदम् ते वक्त्रम् आभजे ॥

अनुवादः—हे देवि ! मैं ताम्बूलराग से रंजित दन्त पन्क्ति से प्रकाशित, बिम्बाफल की अरुणिमा के अधोकर्ता अधर पल्लवों वाले, मन्दस्मित (मधुर मुसुक्यान) की द्युतियुक्त कटाक्ष से सम्पूर्ण दिशाओं को विकसित करने वाले, श्री राम जी के नेत्रों

के विश्राम स्थान, आपके श्री मुख का ध्यान करना है ॥
ताम्बूलराग से परिरंजित, बन्धूकलिकोन्नित अधरारे । बिम्बाफल लाल लजात देख, लगते अरुणाधर ये प्यारे ॥ मन्दस्मित-कान्ति कटाक्ष छटा, वर देती प्रभा दिशाओं में । ध्यानास्पद राघव नयनों का, ध्याता मुख कंज प्रभाओं में ॥
विशेष:—"परेशनयनास्पदम्" प्रियतम श्री रघुनन्दन की, प्रियामुखचन्द्रानुरक्ति की ओर संकेत किया । स्वामी श्री हरिदास जी के शब्दों में प्रभु कहते हैं । प्यारी जू जब जब देखौं तेरो मुख, तब तब नयो नयो लागत । ऐसो भ्रम होत मैं कबहूँ देख्यो न री, दुति को दुति लेखनी न कागज तथा-ज्यों ज्यों देखौं त्यों त्यों नयनन की तृष्णा होत , प्यारी जू को रूप मानो प्यास ही को रूप है । इस प्रकार स्पष्ट है कि श्री जू की रूप माधुरी (मुखछवि) परेश की नयनास्पद है ॥

नासाग्रमौक्तिकफलं फलदं परेशे; ध्यायन्तिनिज जाड्यविनाश हेतो ।
त्रैलोक्यनिर्मलपदं सुखदं त्वदीयं; स्वेच्छाभिकांक्षिण इदं बहुशो रसज्ञाः ॥२९॥

अन्वयः—(हे देवि) ये बहुशो रसज्ञाः त्वदीयम् सुखदम् त्रैलोक्य निर्मल-पदम् स्वेच्छा-भिकांक्षिणः भवन्ति, ते जाड्य विनाशाय हेतोः परेशे-फलदम् इदम् नासाग्र मौक्तिक-फलम् ध्यायन्ति ॥
अनुवादः—हे देवि जो विविध रसों के वेत्ता (रसिक जन) भवदीय, परम सुखद एवं त्रैलोक्य-निर्मल (तीनों लोकों में निर्मल अर्थात परम निर्मल) पदको स्वेच्छा से अभिलाषा करते हैं । वे अपनी जड़ताके विनाशके निमित्त, परेश (श्रीरामजी) में फल (प्रेमाभक्ति) को देने वाले, आपकी इस नासिकाके अग्रभागके मौक्तिकफलका ध्यान करते हैं ॥
बहु भाँति रसों के जो रसज्ञ, तव पावन पद के प्रत्याशी । त्रैलोक्य-अमल निर्मल सुखप्रद, रहते जिस पद के अभिलाषी ॥ वे भी निज जाड्य विनाश हेतु, श्रीराम प्रेम फल के दाता, तवनासा मौक्तिक को ध्याते, जानता सत्य मैं हूँ माता ॥ विशेष भाव यह कि श्री जू की नाशामणि का ध्यान, जीव की जड़ता का विनाशक है ॥२९॥

ज्ञानं निरंजनमिदं विवदन्ति ये ते; मुह्यन्ति सूरि निवहास्तरुणी कटाक्षैः ।
नालोकयन्ति नितरां तवदेवितावद् दीर्घायुषाक्षि युगमंजनरंजितं ते ॥३०॥

अन्वयः—(हे देवि) ये सूरिनिवहाः इदम् निरंजनम् ज्ञानम् विवदन्ति, ते (यावत्) अंजन रंजितम् तव अक्षियुगम् नितरां न आलोकयन्ति, तावद् ते दीर्घायुषा (अपि) तरुणीकटाक्षैः मुह्यन्ति ॥ अनुवाद—हे देवि ! जो पंडित वृन्द, निरंजन ज्ञान ऐसा है, वैसा है इस प्रकार विवाद करते रहते हैं । वे जब तक आपके अंजन रंजित युगल-नयन का पूर्णतया दर्शन नहीं पाते, (अर्थात् आपकी कृपा का आश्रय नहीं लेते)

तब तक वे दीर्घायु-पर्यंत अर्थात् कल्पों की आयु तक साधन करते हुये भी, तरुणियों के कटाक्ष से मोहित होते रहते हैं ॥ वेदान्त निष्ठ विद्वानवर्य, जो ज्ञान निरंजन के भासी । अद्वैत अलक्ष ब्रह्मवार्ता, करने के सन्तत अभ्यासी ॥ अंजन अनुरंजित अक्षि-युगल, जब तक न देवि तव लख पाते । तब तक सुदीर्घ कालावधि तक, तरुणी कटाक्ष में उलझाते ॥ विशेष—भाव यह कि आप की कृपा कटाक्ष के आश्रय के बिना उच्चतम साधन भी आत्यन्तिक विषय-निवृत्ति कर पाने में समर्थ नहीं हो पाते । बार बार विषयों में फसते रहते हैं ॥३०॥

भ्रूवल्लरी विलसितं जगदाहुरीशे; व्यासादयो मुनिवरास्तुत एव नित्यम् ।
नाशाय तस्य तरुणी तिलके त्वदीया; पाशीकृताहरिमनोमृग बन्धनाय ॥३१॥

अन्वयः—हे तरुणीतिलके, हे ईशे ! व्यासादया मुनिवराः नित्यं स्तुत एव आहुः त्वदीया भ्रूवल्लरी जगत् विलसितम् नाशाय, हरिमृगमनो बन्धनाय पाशीकृता ॥ अनुवाद—हे तरुणीशिरोमणे ! हे समर्थे ! श्री व्यासादि मुनिश्रेष्ठ नित्य स्तुति करते हुये कहते हैं कि आपको भ्रूवल्लरी, जगत् के विलास और नाश की कारण तथा श्री राम जी मनरूपी मृग को बाँधने के लिये पाश की भाँति हैं ।
विशेषः—"भ्रूवल्लरी विलसितं" भाव यह कि श्री जू का भृकुति विलास संसार की उत्पत्ति, रक्षण और संहार का कारण है । यथा-उत्पत्ति स्थिति संहार कारिणीं क्लेश हारिणीं, सर्व श्रेयस्करीं सीतां, नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥ "हरिमनोमृग बन्धनाय" 'सिनोत्यतिगुणैः कान्त्यैः" इत्यादि से स्पष्ट है ।

हे तरुणि तिलक हे महाईश, स्तुति करते व्यासादि नित्य ।
भ्रू युगल आपके पास रूप, बन्धन को हरिमृत रूप चित्त ॥
जिनके विलास से सृष्टि सकल, उद्भव विनाश की गति पाती ।
वे भृकुटि युगल भवदीय देवि, मेरी मति मोद मगन ध्याती ॥

भालं विशालमति सौभग भाजनं ते, सिन्दूर बिन्दु रुचिर द्युति दीप्ति मन्तम् ।
पिण्डीकृतः किमुत राग इतीव तस्मिन्; प्रद्योतते जननि जागत् जन्म भाजाम् ॥३२॥

अन्वयः—हे जननि ! सिन्दूर-बिन्दु रुचिरद्युति दीप्तिमन्तम् अति सौभग भाजनम् ते विशालम् भालम् किमुत, जागत् जन्मभाजाम् रागः तस्मिन पिण्डीकृतः इतीव प्रद्योतिते ॥ अनुवाद—हे माँ सिन्दूर बिन्दु की सुन्दर कान्ति से प्रकाशमान, अत्यन्त सौन्दर्याधिष्ठान, आपका विशाल भाल है । संसार में जो भाग्यशाली पुरुष हैं, क्या उनका राग (प्रेम) ही स्वरूप धारण करके, स्थिर नहीं होगया है । जो अत्यन्त प्रकाशमान है ॥

हे अम्ब विशाल तेरा, सिन्दूर बिन्दु द्युति से द्योतित । अत्यन्त सुसौभगका निवास है परम प्रभा से जो ज्योतित ॥ मानों समस्त जग जीवों की, पिण्डीकृत प्रीति निवास थली । ध्याते वह परम प्रकाश उत्स खिल रही मंजु उर कंज कली ॥

विशेष—स्तवकार श्री जू के भाल देश में, प्रतिष्ठित सिन्दूर बिन्दु में भक्तजनों के पिण्डी भूत राग की उत्प्रेक्षा करते हैं ॥

आदर्श वर्तुल कपोल विलोल लोलं, कर्णावतंस युगलं जन जाड्य नाशम् ।
सूर्यादि कान्तिहरमाश्रयमोजसांते; तीव्रधिया धरणिजे स्वधियन्तिधीराः ॥३३॥

अन्वयः—हे धरणि जे ! धीराः आदर्श वर्तुल कपोल विलोललोलं जनजाड्य नाशम् सूर्यादिकान्तिहरम् ओजसाम आश्रयम् ते (तव) कर्णावतंसयुगलं तीव्रं धिया स्वधियन्ति

अनुवाद-हे भूमि नन्दिनी श्री जानकी जी ! धीर-पुरुष मुकुर कपोलों में झूलते हुये, भक्तों के अज्ञान विनाशक, सूर्यादिग्रहों की कान्ति के अपहर्ता, तेजों के आश्रयभूत आपके युगल कर्णभूषणों को विशुद्ध भाव पूर्वक सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान करते हैं ॥

दर्पण द्युतिमय गोल गोल, सुकपोल युगल में छबि भारी । कर्णावतंस जनजाड्य हरण, सूर्यादिग्रहों के द्युति हारी ॥ तेजों के भी जो परमाश्रय, धीरों की धी के ध्येय चरम (हे धरणि सुते ताटंकयुग्म, मेरे वे आश्रयभूत परम ॥

विशेष—"तीव्रं धिया स्वधियन्ति" भाव यह कि प्रज्ञ सन्त हैं । वे भी अत्यन्त सूक्ष्म एवं सत्वस्थिति बुद्धि से जब श्री जू के ताटंक युगल का ध्यान करते हैं, तभी उनके आत्यन्तिक जाड्य का नाश होता है ॥३३॥

कालोविभेति जगतामतिभक्षकस्ते; जैवातृको भयदशीमगुणोयतो सौ ।
सर्वातिवल्लभतया भजनीयरूपे, मन्यामहे हरिरितिश्रुति भूषसारम् ॥३४॥

अन्वयः—हे भजनीय रूपे ! जगताम् अतिभक्षकः कालः ते विभेत, यतः असौ जैवातृक हरिः सर्वाति वल्लभतया असीम गुणः श्रुतिभूषसारम् अभवत् इति मन्याम् हे ॥

अनुवाद—हे भजन करने योग्य स्वरूप वाली देवि ! जगत मात्र का अति भक्षक काल भी आप से डरता है । इस लिये जीवन दाता (हरिः) चन्द्रमा सभी को अति प्रिय होने के लिये निःसीम गुणों से युक्त आपके श्रवणो का अति श्रेष्ठभूषण बना हुआ है, ऐसा हम मानते हैं ॥

भजनीय स्वरूपे हे देवी, अति भक्षक जगका महाकाल । भयभीत आप से है रहता, रहता सुन्दर लै पास जाल ॥ इसलिये चन्द्र जीवन दाता श्रुति भूषण सार स्वरूप बना । श्री कर्ण देश का आश्रय ले, कर लिया भाग्य वर्द्धन अपना ॥ विशेष-"कालो विभेति" भाव यह है कि श्री राज किशोरी जू अत्यन्त कोमल स्वभाव वाली हैं ।

काल जगत मात्र का भक्षक होनेके कारण, अपनी कर्म कर्कशता का विचार करके श्री राजकिशोरी जू से डरता रहता है। क्योंकि श्री जू तो अपराधीके प्रति भी सकरुण ही रहती हैं। चन्द्रमा ने अवसर का लाभ उठाया, अपने तापापहारक कर्म को श्री चरणों में सुनाया, फलतः भोरी श्री राजकिशोरी जू ने उसे अपना कर्ण भूषण बना लिया ॥३४॥

सीमन्तम्यतव सुन्दरतातिसीमं, मुक्ताविभूषितमलं सममागभाजाम्।
निःसीमतापदकृते यतयो यतन्ति; जानीमहे महितवन्दितसीममूर्ते ॥३५॥

अन्वयः—हे महितवन्दितसीममूर्ते ! हे अम्ब ! समभागभाजाम् मुक्ताविभूषितम् सुन्दर तातिसीमम् तव,सीमन्तम् यतयः निस्सीमतापदकृते अलम् यतन्ति। (इतिवयम्) जानकी महे ॥ अनुवाद—हे पूजनीय की परमवन्द्यमूर्तं ! हे माँ समभाग में विभक्त मौक्तिक विभूषित, सौन्दर्य की सीमारूप, आप की माँग (केश सीमा) का सनकादि मुनिश्रेष्ठ, अनन्त पद की प्राप्ति के लिये, अत्यन्त प्रयास पूर्वक नित्य ध्यान करते हैं यह हम जानते हैं ॥

हे महामहिम्न बृन्द वन्दित, हे वन्द्य पदोंकी सीममूर्ति। सनकादि यतीन्द्रों की होती, निस्सीम परम पद की सुपूर्ति ॥ ध्याते जब वे सीमन्त देश, हे अम्ब तुम्हारा छविशाली समभाग विभाजित मौक्तिक से, भूषित सीमन्त प्रभावाली ॥

विशेषः—'निःसीमतापदकृते" कह कर अनन्तपद अथवा दिव्य श्री साकेतधाम की ओर संकेत किया गया। यथा—सुनहु वेद निष्खेद धाम गुनतीत परम शुचि। वर्णाश्रम सुख दुःख, तहाँ नहिं पाप पुण्य रुचि ॥ अति निर्मल निर्वान, परम पद महा-चयनपुर। महादिव्य अति अचल, अगम है ब्रह्मादिक सुर ॥ (रसिकाचार्य अनन्त श्रीस्वामी करुणासिन्धु जी महाराज) ॥३५॥

कालाहिभीति भजतामहिभोगभिन्ना; पायात्परेश्वरि सतामवती सदानः।
एणी दृशस्तव विशालतरानु वेणी; दर्भाग्रभाग सदृशी सुदृशां त्रिलोक्याः ॥३६॥

अन्वयः—हे परेश्वरि ! कालाहि भीति भजताम् सताम् अवती अहि भोगभिन्ना दर्भाग्र भाग सदृशी, त्रिलोक्याः सुदृशाम् एणीदृशः तव विशाल लतरानु वेणी नः सदा पायात् ॥ अनुवाद—हे परेश्वरी ! काल के भय से भजन करने वाले सज्जनों की रक्षा करने वाली, सर्प के शरीर सदृश (समान) कुशाग्रभाग के समान त्रिलोकी की सुनेत्रा देवियों के मध्य मृगी के समान नेत्र वाली, आपकी विशाल तराबेणी हमारी सर्बदा रक्षा करे ॥ जो काल व्याल से भीत जीव, तव भजन निरत साधन-शाली। उन सज्जन जन की तव वेणी, वह कठिन क्लेश हरने वाली ॥ दर्भाग्र तुल्य

नागिन तुल्या, कृष्णा कमनीया वेणी की । करते हम ध्यान मृगाक्षि देवि, त्रैलोक्य सुनेत्रा श्रेणीकी ।। विशेष-स्पष्ट है । भजन निष्ठ साधक काल भय से मुक्त हो जाते हैं ।।३६।।

साटीसुसूक्ष्मतराति गतानि नीला; सौवर्णसूत्रकलिता कृपयावृताते ।
भर्तुः स्वरूपमनुभावयतां जनानां; प्रीत्यैकरोषि परदेवि यदापिधानम् ।।३७।।

अन्वयः– हे परदेवि ! भर्तुः स्वरूप अनुभावयतां जनानां प्रीत्यै यतत्वं अपिधानं करोषि, सा साटी ते कृपयावृता, सौवर्णसूत्र कलिता अति नील सु सूक्ष्म तरातिगता ।। अनुवाद—हे परदेवि ! भर्ता श्री राघवेन्द्र के भजननिष्ठ जनों की प्रीति के हेतु आप जिस साटिका (साड़ी) को धारण करती हैं । वह अत्यन्त कृपा से पूर्ण, स्वर्णसूत्र विरचित अत्यन्त नील एवं अत्यन्त ही झीनी है ।

हे परम देवि ! तुम्हरे तनकी; साटिका नील सूक्ष्मा रम्या । सौवर्णसूत्रग्रथिता दिव्या, भावुक मन भव्य भाव गम्या ।। श्री रामस्वरूप ध्यानकर्ता, भक्तों को परम प्रीति दात्री । तव परम कृपा की मूर्ति रूप, हे करुणामयी महद्धात्री ।।

विशेष– परदेवि' कहकर स्तवकार ने श्री जू का परदेवित्व गान किया । सभी महान देवियाँ भी श्री जू की सेवा में निरत रहती हैं । यथा—यस्मिनशैलसुतालिकेन्दु-कलिका कल्याण माल्यायते । वाग्देवी कवरी विभूषणमणिग्रामः धलस्तोमिति ।। नासामौक्तिक रश्मयस्मर सरोजाक्ष्यास्तुषारन्त्य हो । मैथिल्या चरणं शुपल्लव चयः शय्यास्तु मच्चेतशः ।। श्री जानकी चरण चामरे ।। तथा सिया जू रानिन में महरानी गौरा पान लगावति हँसि-हँसि, रमा खवावति आनी ।। इत्यादि आचार्य वाणियों से स्पष्ट है ।।

पारेगिरां गुणनिधेश्रुतियो वदन्ति, रूपं त्वदीयमपरं मनसोप्यगम्यम् ।
साक्षात् कथं सरसिजाक्षि भवेद्दते ते, बुद्धौ कृपामनु कृशोदरि मा दृशांतत् ।।३८।।

अन्वयः—हे गुणनिधे ! हे सरसिजाक्षि ! हे कृशोदरि ! श्रुतयः त्वदीयम् अपरं रूपं गिरां पारे मनसा अपि अगम्यम् वदन्ति । तत् ते कृपाम् ऋते मादृशाम् बुद्धौ कथम् साक्षात् अनुभवेत ।। अनुवाद-हे गुणनिधे ! हे सरसिज (कमल) नयने ! हे कृशोदरि ! वेद आपके अपार रूप को वाणी से परे, और मन से भी अगम्य कहते हैं । वह रूप आप की कृपा के बिना हम जैसों की बुद्धि में कैसे अनुभूत हो सकता है ।। हे सरसिजाक्षि सद्गुणनिलये, हे देवि कृशोदरि कल्याणी । श्रुतिगीत आप का रूप परम, वर्णन कर सकती कब वाणी ।। जो मनसे सदा अगम्य रम्य, वह रूप महाँ मंगलकारी । अनुभूत बुद्धि से हो सकता, हम जैसों के मंगलकारी ।। विशेष-भाव यह है कि श्री राजकिशोरी जू के काम वैभव का वेदों में गायन है । उनका वह रूप उनकी कृपा

के बिना मन से भी परे हैं ॥३८॥

किं चित्रमत्र जननि ! प्रभया प्रकाश्यं; विश्वं वदन्ति मुनियस्तव देवि ! देवाः।
जाताश्रयस्त्रिभुवनैर्गुणतोभिवन्द्यः; स्त्राणादि कर्म विभवं परमस्य यस्याः ॥३६॥

अन्वयः—हे देवि ! हे जननि ! मुनयः देवाः विश्वम् तव प्रभया प्रकाश्यम् वदन्ति। अस्य त्राणादि कर्मस्याः परम विभव (तदा) ॥ अनुवाद-हे देवि ! हे माता ! मुनि गण एवं देववृन्द, विश्व को आपकी कान्ति से प्रकाशित कहते हैं। इस विश्व के रक्षणादि कर्म को जिनका सर्वोत्कृष्ट वैभव बतलाते हैं, तब आपका आश्रय लेने वाला जन, उत्तमोत्तम गुणों से त्रैलोक्य में वन्दनीय हो इसमें क्या आश्चर्य है ॥ हे अम्ब देवि मुनिगण कहते, है विश्व प्रकाश प्रभा तेरी। त्राणादि कर्म वैभव विशिष्टः उत्कृष्ट देवि ! तेरे हैं री ॥ जो चरणों का आश्रय ले ले, बन जाय त्रिलोकी बन्दनीय आश्चर्य नहीं कुछ भी इसमें, हे मान्यों की भी माननीय ॥ विशेष-"त्राणादिकर्मः परम विभवम्" त्राणादि कर्म से तात्पर्य, उद्भव, स्थिति, संहारादि" कर्म जिनके सर्वोत्कृष्ट वैभव हैं यथा- उद्भव स्थिति संहार कारिणीं क्लेश हारिणीम्। सर्वश्रेयस्करीं सीतां, नतोऽहंरामवल्लभाम् ॥कहकर मानसकार ने गायन किया है ॥३६॥

वेदास्तवाम्ब ! विवदन्ति निज स्वरूपं; नित्यानुभूति भवभाव पराः परेशैः।
निर्णेतुमद्य यतयस्तपसा यतन्ते; बोधाय पाद सरसीरुह युग्म भृङ्गाः ॥४०॥

अन्वयः—हे अम्ब ! वेदा परेशैः नित्यानुभूति भवभाव परा, तव निज स्वरूपम् विवदन्ति, तत बोधाय निर्णेतुम् यतयः पादसरसीरुह युग्म भृङ्गाः अद्य तपसा यतन्ते ॥ अनुवाद—हे माँ वेद ईश्वरों के सहित आपकी नित्यानुभूति के भाव में परायण हो, आपके निज स्वरूप का वर्णन करते हैं। (वर्णन के उस विवाद के) निर्णयार्थं एवं ज्ञानार्थं मुनिगण युगल चरणपंकजों के भ्रमर रूप हो आज (भी) तपस्या के द्वारा यत्न में लगे हैं ॥ हे अम्ब ईश्वरों सहित वेद नित्यानुभूति के भाव भरे। भवदीय स्वरूप सुनिगदन में, रहते निमग्न रस के अगरे ॥ उस रूप विमल के बोध हेतु निर्णय पा लेने को विचार। सनकादि मुनीन्द्र आज भी हैं, तप निरत त्वरा में भर उदार ॥ विशेष—"परेशैः" भाव यह है कि-ब्रह्मादि त्रिदेव ये ईश कहे जाते हैं। श्री राजकिशोरी जू अन्य देवी देवताओं से तो वन्दित हैं ही, इन त्रिदेवों से भी जो ईश्वर कोटि के हैं, इनसे भी परम वन्द्य हैं ॥४०॥

जातं त्वदेव नितरां जगतां निदानं; मन्यामहे तदिदमम्ब कृतं श्रुतीनाम्।
सर्वं यतः खलु विचेष्टितमाशुशक्तेः; कार्यं हि कारण गुणानवलम्ब विद्यात् ॥४१॥

अन्वयः—हे अम्ब ! नितरां निदानं, त्वत् एव जातम् तदिदम् श्रुतीनां कृतम् मन्याम् हे, सर्वं खलु शक्तेः आशु विचेष्टितम्, यतः हि कार्यंहि कारण गुणान् अवलम्ब विद्यात् ॥ अनुवाद-हे माता ! संसार का परम आदि कारण (महत्तत्व) आप से ही उद्भूत है । हम इसे श्रुतियों का अभिप्राय मानते हैं । यह समस्त दृश्य शक्ति की ही त्वरित चेष्टा का ही स्वरूप है । क्यों कि निश्चय ही कार्य कारण गुणों के अवलम्ब से स्थित होता है ॥

अम्बे ! जगकारण महत्तत्व, उद्भूत आप से श्रुति गाते । सम्पूर्ण दृश्य संसार आप की, त्वरित चेष्टा बतलाते ॥ सच भी है प्रत्येक कार्यकारण के गुण अपनाता है । इस लिये चराचर जड़ चेतन, सीतामय ही दिखलाता है ॥ विशेष—सांख्य शास्त्र के अनुसार, मूल प्रकृति ही महत्तत्व की आदि कारण है पुनः महत्तत्व से ही पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच तन्मात्राओं का विस्तार हुआ है । इस प्रकार संसार कार्य और श्री तत्त्व कारण हुआ, अस्तु सम्पूर्ण विश्व ही श्री सीतामय हुआ ॥ ४१॥

जानीमहे जननि ! ते।नयनारविन्द स्योन्मीलिनेऽजनि जगत् क्षयस्तन्निमीलात् ।
वैषम्य शून्य समतां समुपागते यत्स्यादस्य पालनमसंशयमस्य नूनम् ॥४१॥

अन्वयः—हे जननि ! ते नयनारविन्दस्य उन्मीलने जगत् अजनि, तत् निमीलात् अस्यक्षयम् स्यात् यत् वैषम्यशून्य समताम् समुपागते सति, अस्य असंशयम् पालनम् इति नूनम् जानीमहे ॥ अनुवाद—हे जननी ! आपके नयनारविन्द के उन्मीलन (खोलने) से संसार का उद्भव और उसके निमीलन (बन्दकरने) से इसका (संसार का) नाश होता है, और उनकी वैषम्यशून्य समता (अर्थात उन्मीलन निमीलन क्रिया से शून्य एक रस अवलोकन) से इस संसार का पालन होता है, ऐसा हम निश्चय ही जानते हैं ॥ माता ! दृग के उन्मीलन से, संसार प्रभव हो जाता है । करते ही नेत्र निमीलन के, उसका विनाश दिखलाता है ॥ वैषम्यशून्य समता से ही, पालन सदैव होता रहता। निश्चयही यही परमसत है' अन्तरतम अपना बतलाता ॥ विशेष- 'वैषम्शून्य समता" अर्थात दृष्टि साम्यावस्था । भाव यह है कि जब दृष्टि का न उन्मीलन होता और न निमीलन केवल एक रस अवलोकन होता है, तब विश्व का भरण पोषण होता है ॥४२॥

ज्ञातं त्वदीयमपरं चरितं विशालं; भावंभवे ननुनिजे प्रकटी करोषि ।
प्रेम्णैवतैः प्रथमतः परमानुभावं भाव्यं पदाब्जमनिशं स्वजनैरतस्ते ॥४३॥

अन्वयः—(हे देवि !) त्वदीयं अपरं चरितं (अस्माभिः) ज्ञातम्, ननुनिजे भवे विशालं

भावं प्रकटी करोषि । अतः तैः स्वजनैः प्रथमतः परमानुभावम् ते पदाब्ज अनिशं प्रेम्णैव भाव्यम् ॥ अनुवाद—हे देवि ! आपका एक और चरित्र भी हम जानते हैं (वह यह) कि आप अपने चिन्मय स्वरूप में भक्तों के हृदय में महाभाव का प्राकट्य करती हैं। इसी लिये वे प्रथम से ही परम प्रकाश वाले आपके श्री चरणों की प्रीति पूर्वक निरन्तर भावना (ध्यान) करते हैं ॥ इस से भी भिन्न चरित्र एक जानते आपका हे देवी ! पाजाते महाभाव चिन्मय, वपु में तेरे जो पद सेवी ॥ अतएव भक्तजन प्राग्गेव, पदपंकज पूर्ण प्रकाश भरे । अत्यन्त प्रीति से अहर्निशा, ध्याते अपने उरबीच धरे ॥ विशेष– "विशालं भावं प्रकटी करोषि" भाव यह है कि महाँभाव का उदय, महाँभाव की घनीभूत प्रतिमा श्री विदेहराज नन्दिनी जू की कृपा से ही सम्भव है। आह्ला दिनीं शक्ति के घनीभूत विलाशका नाम ही प्रेम है। प्रेम की प्रगाढ़तम अवस्था का नाम ही महाभाव है। वह महाँभाव ही श्री राजराजेश्वरी श्री जू का अपना स्वरूप है।

येषामदः परमवस्तु च तज्जनानां, प्रद्योतते जनकजा चरणारविन्दम् ।
सर्वं समीक्ष्य इह कर्ममनोवचोभिः ब्रह्म स्वरूपमति दुर्लभतानु सेव्यम् ॥४४॥

अन्वयः—(हे देवि !) येषां अदः जनकजा चरणारविन्दम् परम वस्तु प्रद्योतते, तज्ज-नानां, इह कर्म मनो वचोभिः सर्वं समीक्ष्य अति दुर्लभतानु सेव्यम् ब्रह्म स्वरूपम् भाति ॥ अनुवाद—(हे देवि ! आपके कृपापात्र) जिन भक्तों को श्री चरणारविन्द ही परम वस्तु (परम पुरुषार्थ स्वरूप) प्रकाशित हो गये, उन्हें इस संसार में, कर्म वचन और मन से ब्रह्म स्वरूप (निर्गुण निराकार कूटस्थ रूपों वाला) सब देखते हुये अत्यन्त दुर्लभता से सेव्य प्रतीत होता है ॥ जिन रसिक जनों के अन्तर में, (श्री) चरणों का परम प्रकाश हुआ। परम चरम पुरुषार्थ रूप, यह प्रसरित भाव विकाश हुआ उनको मन बचन कर्म से भी, दुसेव्य ब्रह्म भी हो जाता। उनका मन भृंग विश्वभर में, रस की न गन्ध किंचित पाता ॥४४॥

किं दुर्लभं चरण पङ्कज सेवयाते, पूर्णा रमन्ति रमणीय तया त्रिलोक्याम् ।
यस्तु प्रकाशविशदं हृदये त्वदीयं; तेषामहो किमुत साधन कोटि यत्नैः ॥४५॥

अन्वयः—हे देवि ! ते (तव) चरणपङ्कज सेवया किं दुर्लभं (तव भक्तः) रमणीयतया पूर्णा रमन्ति (येषाम्) हृदये प्रकाश विशदं वस्तु (त्वदीयं चरणारविन्दं विद्योतते) तेषां अहो साधन कोटि यत्नैः किमुत ॥ अनुवाद—हे देवि ! आपके श्री चरण कमलों की सेवा से क्या दुर्लभ है ? आपके भक्त जन रमणीयता से परिपूर्ण होकर त्रैलोक्य में रमण करते हैं। जिनके हृदय में स्वच्छ एवं प्रकाशमय वस्तु (आपके श्रीचरणारविन्द)

प्रतिष्ठित हैं । अहः उन्हें करोड़ों (अनेक प्रकार के) साधनों से क्या प्रयोजन ॥ हे देवि श्री चरण सेवा से, दुर्लभ दुष्प्राप्य भला क्या है । यह सोच आपके भक्तों को, मिल जाता भला नहीं क्या है ॥ हो गये प्रतिष्ठित हृदयों में, जिनके श्री चरण प्रकाश धाम । उनको साधन के कोटि कोटि, यत्नों से फिर क्या रहा काम ॥ विशेष— "रमणीय तया पूर्णा रमन्ति" रमणीय तया से परिपूर्ण होकर त्रैलोक्य में रमण करते हैं भाव यह है कि उन्हें श्री चरणों की सेवा की रमणीयता के रस में निरन्तर निमग्न हो त्रैलोक्य में रमते रहते हैं ॥४५॥

धन्यास्त एव तवदेवि ! पदारविन्दं; स्यन्दाय मान मकरन्द महर्निशं ये ।
भृङ्गायमानमनसो नितरां भजन्ते, भावाव बोध निपुणाः परदेवतायाः ॥४६॥

अन्वयः—हे देवि ! भावाववोधनिपुणाः ये परदेवतायाः तव स्यन्दायमान मकरन्दम पादारविन्दम अहर्निशं भृङ्गायमान मनसा नितराम् भजन्ते ते एव धन्याः ॥ अनुवाद– हे देवि भाव सम्बन्धी ज्ञान में निपुण (दक्ष) जो भक्त परदेवता स्वरूप आपके मकरन्द स्यन्दित श्री चरणारविन्दों में अपने मनको भ्रमर बनाये हुये, रातदिन सर्वदा पूर्णतया भजन परायण रहते हैं वे ही धन्य हैं ॥ भावाववोध में निपुण सन्त, स्य-न्दाय मान मकरन्द चरण । अरविन्द अनुपम का अनुदिन, मनसे करते बनि भृङ्ग वरण ॥ निर्भर नितान्त होकर रहते, अनुरक्त भजन में निरत महाँ । हैं धन्य वही जगतीतल में, होगी तुलना कब भला कहाँ ॥ विशेष—"भावाववोधनिपुणाः" कहकर रागानुगाभक्ति के मर्मज्ञ सन्तों की ओर संकेत किया गया है । नवधा एवं गौणी भक्ति के द्वारा जिस रूप की झलक प्राप्त होती है; रसिक जन उससे सन्तुष्ट नहीं होते । वे तो रसात्मक सम्बन्ध की ही कामना करते हैं ॥४६॥

पादाब्जराग परिरञ्जित चित्तभृङ्गाः; येषां समीक्ष्य इह जातमिदं स्वरूपम् ।
तेषां न किं प्रवदते परितो वरिष्ठं, साध्यं भवेदिह परत्र न किञ्चिदन्यत् ॥४७॥

अन्वयः—हे देवि ! इदं स्वरूप समीक्ष्य इह येषाम् पादाब्जराग परिरञ्जित चित्त भृङ्गः जातम्, तेषां परितो वरिष्ठम किं न प्रवदते । (पुनः तेषां) इह परत्र अन्यत् किञ्चित न अनुवाद-हे देवि इस स्वरूप को देखकर आपके चरणारविन्दों के अनुराग से इस संसार में, जिन भक्तों का चित्त अनुरक्त भृङ्गवत् हो गया, उनके लिये इस से अधिक कोई श्रेष्ठ वस्तु कौन बता सकता है । (वस्तुतः) उनके लिये इस लोक और परलोक में अन्य कुछ भी साध्य वस्तु नहीं है ॥ अवलोक आपका यह स्वरूप, जो चरण कमल अनुरक्त हुये । जिनके मंगलमय चित्त भृंग पी पद पराग उन्मत्त हुये ॥ इससे फिर

श्रेष्ठ त्रिलोकी में क्या और कोई बतलावेगा। प्राप्तव्य पदार्थ और कोई कैसे तुलना में आवेगा। विशेष--'परितो वरिष्ठम् किम्" भाव यह है कि सम्पूर्ण साधनों के द्वारा परम साधन कैवल्यपद और कैवल्य की भी निस्सारता प्रेमाभक्ति की उपलब्धि में प्रतीत होती है। उस प्रेमाभक्ति के परम आश्रय अधिष्ठान श्री प्रिया जू के पद कमल हैं। अस्तु इससे श्रेष्ठ वस्तु कोई भी क्या बतलावेगा। सम्भवतः इसी भाव भूमि में प्रतिष्ठित गो० श्री हित हरिवंश जी महाराज कहते हैं। कि—अलं विषय वार्त्तया नरक कोटि बीभत्सया, वृथा श्रुति कथादयो बत् बिभेमि कैवल्यतः। परेश भजनोन्मदा यदि शुकादयः किं ततः, परं तु मम राधिका पदरसे मनो मज्जतु ॥४८॥

चुम्बन्ति चिद्घन महोमकरन्दमस्या, देवैर्मुनीन्द्रनिचयैरति दुर्लभं ते।
पादाब्जयोरति विकाश विलास बोधः; स्यादेव देवि तव कान्तनिजस्वरूपे ॥४८॥

अन्वयः– हे देवि ! (ये रसिकाः) देवैः मुनीन्द्र निचयैः अति दुर्लभं अस्याःस्ते पादाब्जयोः चिद्घनम् मकरन्दम् चुम्बन्ति (तेषाम्) तव कान्त निजस्वरूपे अतिविकास विलास बोधः स्यादेव। अनुवाद—हे देवि ! जो रसिकजन. देवता और मुनीन्द्रवृन्द को भी दुर्लभ आपके श्री चरणकमलों के चिद्घन मकरन्द को पान करते हैं। उन्हें आपके कान्त श्री रघुनन्दन के स्वरूप में अत्यन्त प्रकाश युक्त विलास का बोध होता ही है। देवेन्द्र मुनीन्द्रों को दुर्लभ; चरणों का चिद्घन कमलराग। जो रसिक शिरोमणि पीते हैं, पावन पदाब्ज का मधुपराग। श्री राघवेन्द्र के निज वपु का, मिलता है उन्हें विलास बोध। एकान्तिक चारुचरित्रों का, हो जाता स्वयं प्रकाश शोध। विशेष— "अति विलास बोधः स्यादेव" भाव यह है कि श्री राज राजेश्वरीजू के श्री चरणानुरागी रसिकों को श्री राम जी की दिव्यातिदिव्य एकान्तिक विमल लीलाओं की अनुभूति स्वयं ही हो जाती है। उन्हें अलग से किसी साधना की आवश्यकता नहीं है ॥४८॥

यावन्न ते सरसिजद्युतिहारिपादे; नस्याद्रतिस्तरुनवाङ्कुर खण्डताशे।
तावत् कथं तरुणिमौलिमणे जनानां; ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे ॥४९॥

अन्वयः—हे तरुणिमौलिमणे ! हे भामिनि ! यावत् ते तरुनवांकुर खण्डिताशे सरसिजद्युतिहारिपादे रतिः न स्यात् तावत् जनानां रामरूपे दृढं ज्ञानम् कथं भवति। अनुवाद—हे नागरिशिरोमणि ! जब तक आपके किसलय कान्ति विमोचक, पद्म-प्रभापहारक श्री चरणकमलों में रति का उदय नहीं होता, तब तक भक्तों को श्री राम स्वरूप का दृढ ज्ञान कैसे सम्भव है। हे तरुणिमणे ! जबतक जनकी, रति श्रीचरणों

में हुई नहीं । किसलय कमनीय कमल द्युति के, द्वारक में मति गति हुई नहीं । तब तक श्री रघुवर रूप ज्ञान, दृढतर कैसे हो पायेगा । श्री चरण शरण के बिना भला, कोई उनको पाजायेगा । विशेष—भाव यह है कि श्री राघव के रसात्मक वपु का पाना श्री मिथिलेश किशोरी जू की कृपा के बिना सर्वथा असम्भव है ॥४६॥

साक्षात्तपोव्रत यमैर्नियमैः समीहे, त्कर्तुं कृपामृतमिह प्रसभंस्वरूपम् ।
नाथस्यते श्रुतिवचोविषयं कथं स्यान्मूढो वृथोत्सृजतिदेवि सुखान्यमूनि ॥५०॥

अन्वयः—हे देवि ! श्रुतिवचोविषयम् कृपामृत ते नाथस्य स्वरूपम् इह तपोव्रतयमैः नियमैः प्रसभम् साक्षात्कर्तुम् समीहेत् मूढः अमूनि सुखानि वृथा उत्सृजति कथम् स्यात् । अनुवाद—वेदवाणी के अविषय, कृपामृत पूर्ण आपके स्वामी (श्री राम जी) के स्वरूप का, यहाँ तपोंव्रतों, यम नियमों द्वारा जो हठ पूर्वक प्रत्यक्षीकरण की चेष्टा करता है, वह मूर्ख यहाँ के (भी) सुखों को व्यर्थ ही छोड़ता है । (उस स्वरूप का साक्षात्कार आपकी कृपा के बिना कैसे हो सकता है) । जो अविषय वेदवचन के भी वे कृपासिन्धु हैं तव स्वामी । तप और व्रतों यम नियमों से, हो सकते क्या दृगपथ-गामी । जो साक्षात्प्रभु दर्शन हित, हठकरि लौकिक सुख त्याग रहा । वह मूर्ख दुराशा में मरता, हे देवि ! व्यर्थ ही भाग रहा । विशेष—भाव यह है कि भगवत्साक्षात्कार करने में जीव का किया हुआ अपना कोई भी प्रयास सक्षम नहीं है । श्री जू की कृपा ही उस तत्त्व के साक्षात्कार का एकमात्र परम साधन है ॥५०॥

योगाधिरूढ़ मुनियो हरि पादपद्मे; ध्यायन्ति ये चरणपङ्कज युग्ममन्तः ।
वाञ्छन्ति विघ्न शतसोप्य निवार्य्यमाणां; भक्ति भवाब्धितरणायकृपा पयोधे ॥५१॥

अन्वयः—वे कृपापयोधे ! यो योगाधिरूढ मुनयः भवाब्धितरणाय हरिपाद् ये विघ्नशतसोपि अनिवार्यमाणाम् भक्ति वाञ्छन्ति (ते) तव चरणपङ्कज युग्मम् अन्तः ध्यायन्ति । अनुवाद--हे कृपानिधे ! जो योग में तत्पर मुनिजन भव समुद्र संतरण के निमित्त, सैकड़ों विघ्नों से भी निवारित न हो सकने योग्य भक्ति को चाहते है । वे आपके युगल श्री पादपंकजो का अन्तःकरण में ध्यान करते है । योगाधिरूढ मुनि-वृन्दवर्य, जो कांक्षी भवनिधि तरने के । अनिवार्य्य माणशत विघ्नों से रसमयी भक्तिउर भरने के । उस भक्ति विमल निधि प्राप्ति हेतु, श्री चरणों को वे ध्याते हैं । दुर्लभ तम भी जगतीतल का, वे यहाँ सभी कुछ पाते हैं । विशेष-- विघ्नशतसोप्यनिवार्य्य माणाम्" भाव यह कि श्रीराम भक्ति जिस हृदय का वरन करना चाहती हैं, उसका वरण सैकड़ों विघ्नों के उपस्थित करने पर भी कर ही लेती हैं । ऐसी सर्वसमर्था

भक्ति के उपलब्धि के परम उत्स, भगवती श्री जानकी जी के युगल श्री चरण ही हैं। यह सोचकर मुनिजन उन्हीं का ध्यान करते हैं ॥५१॥

चार्वङ्गि ते चरण चारण वन्दि सङ्गं, मह्यं विदेहतनये परिदेहि नान्यम्।
याचे वरं वर विदां वरदेभवत्याः येनामुना तवधवे मम रञ्जनास्यात् ॥५२॥

अन्वयः--हे वरविदां वरदे! हे चार्वङ्गि! हे श्री विदेह तनये! ते चरण चारण वन्दि सङ्ग मह्यं परिदेहि, येन अमुना तव धवे मम रञ्जनास्यात्। भवत्या अन्यं वरं न याचे। अनुवाद--हे श्रेष्ठ ज्ञानियों को वरदान देनेवाला! हे सुन्दरांगी! हे श्रीविदेह राजनन्दिनी जू! अपने श्री चरणों के परिचारकों के चरणों की वन्दना करनेवालों का संग हमको दीजिये। जिस संग से आपके स्वामी श्री राम जी में मेरी स्वाभाविक अनुरक्ति हो। आपसे और कोई अन्य वर मैं नहीं माँगता। हे वर विद्वानों को वरदे! चार्वङ्गि प्रार्थना सुन लीजे। श्रीचरण चारणों के चारण, जनका सत्संग मुझे दीजे। होजाये जिससे दृढाशक्ति, स्वामी श्रीअवधबिहारी में। वर इससे भिन्न न मांग रहा, बैठा हूँ इसी तयारी में। विशेष--"वर विदां" पराविद्या के ज्ञानी ही श्रेष्ठ ज्ञानी हैं। उन विद्वानों को भी आप श्री विदेहनन्दिनी जू वरदान देनेवाली हैं ॥५२॥

याचेऽहमम्ब रघुनन्दन मूर्ति भावं; सार्द्धं त्वयातिदृढमञ्जलिना विशेषम्।
त्वं देहि वेत्तृवरदे मुनि सङ्घ मुख्याः मन्यन्ति वल्लभतरां स्वपतेभवन्ताम् ॥५३॥

अन्वयः--हे अम्ब! मुनिसङ्घ मुख्याः भवन्तीं स्वपतेः वल्लभतरां मन्यन्ति। हे वेत्तृ-वरदे! अहं त्वयासार्द्धं अविशेषं अतिदृढं रघुनन्दमूर्ति भावं अञ्जलिनायाचे त्वं देहि अनुवाद--हे माँ! मुनिसमूहों के अधिपतिगण आपको अपने पति (श्री राम जी) को अतिवल्लभा मानते हैं। अतः हे सर्वज्ञों को वरदात्री! मैं आपके सहित न्युनाधिक भाव रहित अति दृढ श्री रघुनन्दन जी की मूर्ति का भाव (अत्यन्त प्रेमाशक्ति) अंजलिबद्ध होकर माँगता हूँ। आप यह दीजिये। मुनि संघ मुख्यगण हे माता! वल्लभा परम पति को गाते। हैं आप परमवेत्ताओं की, वरदायिनि ऐसा बतलाते। अतएव आपके संग सदा, रघुनन्दन की रति माँग रहा। करबद्ध द्वार में खड़ा हुआ, इस मति गति से अनुराग रहा। विशेष--"रघुनन्दन मूर्तिभावं" से तात्पर्य श्रीराघवेन्द्र की अष्टयाम सेवा को भावना से प्रतीत होता है। रसिक सन्त भावना करते हैं कि-सोदिन आइहैं कब फेरि। नित विलास बिलोकिहौं, पिय संग प्रकृति निवेरि ॥ आरती करि भोगवल्लभ, देखिहौं दृग हेरि। विविधविधि नहवाय, साज सिंगारि आरति फेरि ॥ पितहिं पिय सिय मातु मिलि, सँग छबि कलेऊ हेरि। लखन चौपड़ खेल दम्पति, छबि सुभोजन केरि। उठि जगाय सुकुंज केलि, अनेक हिये चितेरि ॥

(श्री मंजुल पदावली) इस प्रकार आठों याम श्री प्रिया प्रीतम की सेवामय ध्यान भावना में निमग्न रहने की कांक्षा है ॥५३॥

एवं स्तुत्वा परं रूपं जानक्या जाड्यनाशनम् ।
उपरराम शान्तात्मा योगेश्वरः सदा शिवः ॥५४॥
निरीक्ष्य तन्मुखाम्भोजं भावयन्रूप मद्भुतम् ।
कांक्षं स्तस्याः परां भक्ति पादपंकज योर्द्वाम् ॥५५॥

अन्वयः--योगेश्वरः शान्तात्मा सदाशिवः जाड्यनाशनं श्री जानक्याः परं रूपं एवं स्तुत्वा तं मुखाम्भोजं निरीक्ष्य अद्भुतं रूपं भावयन् । तस्याः पादपंकजयोर्द्वां परां भक्ति कांक्ष्यं उपरराम । अनुवाद--जाड्य विनाशक श्री जानकी जी के पर रूप की इस प्रकार स्तुति करके शान्तात्मा, योगेश्वर भगवान शिव ने, उनके मुखकमल का दर्शन करके, अद्भुत रूप की भावना तथा उनके श्री चरणकमलों में; पराभक्ति की काँक्षा करते हुये, उपरामना प्राप्त की । स्तुति करके इस भांति परम, उन जाड्य विनाशनकारी का । मुख पंकज का दर्शन पाया, श्री पराशक्ति सुकुमारी का । ध्याते अद्भुत स्वरूप उनका मांगते हुये पदकंज भक्ति । योगेश्वर शंकर शान्त हृदय, होगये मौन पा कृपा शक्ति । विशेष--"जाड्य नाशनम्" श्री जू 'सम्बित' शक्ति की अधिष्ठातृ देवता हैं । जीव की जड़ता का नाश उन्हीं श्री जू की कृपा से सम्भव है । अनादि अविद्या ही जीव को जड़ बना रही है । साक्षात्पराविद्या श्री जू के प्राकट्य से अविद्या के विनाश के साथ ही जड़ता का विनाश होना स्वाभाविक है ॥५४-५५॥

उवाच तं वरारोहा जानकी भक्तवत्सला ।
एवमस्तु महादेव यत्त्वयोक्तं च नान्यथा ॥५६॥

अन्वयः--भक्तवत्सला वरारोहा जानकी तं शिवं उवाच हे महादेव ! यत्वयोक्तं एवमस्तु अन्यथा न । अनुवाद--भक्तवत्सला, परमसुन्दरी श्री जानकी जी ने उन श्री शिव जी से कहा कि--हे महादेव जी ! आपने जैसा कहा वैसा ही होगा अन्यथा नहीं । सुनकर ऐसा स्तवन दिव्य, वे भक्तवत्सला वैदेही । होगईं प्रसन्न वरारोहा, सर्वज्ञा भावुकजन नेही । बोलीं गद्गद हो एवमस्तु, हे महादेव ! अन्यथा नहीं । होगी मन कांक्षा पूर्ण सभी, वाणी हो सकती वृथा नहीं ॥ विशेष--"एवमस्तु च नान्यथा" स्तवन के अन्त में भगवती श्री मिथिलेश नन्दिनी जू का यह वरदान, भगवान शंकर के माध्यम से फल श्रुति के रूप में दिया गया है । तथा नान्यथा शब्द के द्वारा उसको

अवश्य फलरूपता व्यक्त की गई है। "भक्तवत्सला" विशेषण के द्वारा श्री किशोरी जू के भाव विगलित अन्तःकरण की ओर संकेत किया। यथा--हिमदुलगे जो सौ सौ सिसकत, आपन नाम विचारी। देत परम रस रूप धाम निज, अचल अमल अवि-कारी॥ हे कारुण्यपूर्ण मृदु लोचनि, मोचनि दोष दवारी। क्षमामयी मंजुल मृदु मूरति, श्री मिथिलेश दुलारी ॥५६॥

अन्यं ते कांक्षितं ब्रूहि दास्यामिदेव दुर्लभम्।

सत्यान्मयि कृपोन्मुख्यां न किंचितस्य दुर्लभम् ॥५७॥

अन्वयः--ते अन्य यत् कांक्षितं तद्ब्रूहि देवदुर्लभम् अपिदास्यामिमयि कृपोन्मुख्यां सत्यां तस्य किंचित दुर्लभम् न। अनुवाद--(श्री जू ने आगे कहा है कि हे महादेव जी !) और भी जो आपका अभीष्ट हो, भले ही वह देवदुर्लभ भी क्यों न हो, आप कहिये मैं वह भी प्रदान करूँगी। मेरी प्रसन्नता के पश्चात "दुर्लभ" नाम की कोई भी वस्तु नहीं होती। बोलीं श्री रामवल्लभा हे, शिवशंकर ! हो निर्भीक मना। लें माँग और भी निज अभीष्ट वरदान भले हो परमघना॥ देवों को भी दुर्लभ है पर, कर सकती आज प्रदान सभी, मेरी प्रसन्नता शब्दकोष, रखता क्या दुर्लभ शब्द कभी ॥५७॥

प्रसन्नवदनां दृष्ट्वा सोऽपि देवशिरोमणिः। ययाचे वरमात्मीयं रहस्यं भावबोधकः ॥५८॥

प्रादात्तस्मै वदान्या सा यद्यन्मनसि कांक्षितम्।

वरं वरेश्वरी साक्षात्पुनरुवाच साहितम ॥५९॥

अन्वयः--देवशिरोमणिः स शिवः अपि प्रसन्न वदनां तां श्री जानकीं दृष्ट्वा भाव-बोधकं आत्मीयं रहस्यं वरं याचे ॥५८॥ वदान्या सा तस्मै शिवाय यद्यन्मनसि कांक्षितं तत्तद्वरं प्रादात् पुनः स साक्षात् वरेश्वरी तं शिवं उवाच ॥५९॥ अनुवाद--देव शिरो-मणि श्री शिव जी ने भी प्रसन्नवदना उन श्री वैदेही को देखकर अपने भावबोधक रहस्य (एकान्तिक उपासना) का वरदान माँगा ॥५८॥ परम उदार उन श्री जानकी जू ने शिव जी का जो जो भी मनोभिलाषित (मन का मनोरथ) था, वह वह वर-देकर, साक्षात् वरेश्वरी श्री राजकिशोरी जू आगे बोलीं ॥५९॥ देवाधि देव ने इस प्रकार, उनको प्रसन्नमुख अवलोका। तब माँग लिया भावानुसार, एकान्तिक मन न रहा रोका॥ साक्षात् वरेश्वरि ने शिवको, उनका मनवांछित दान दिया। औदार्यमयी ने फिर आगे, कहते ऐसा सन्मान किया॥ विशेष—छन्द संख्या ५९ में श्री राज-किशोरी जू ने श्री शिव जी को अभीष्ट तो प्रदान किया ही अब आगे स्वेच्छा से वरदान दे रही हैं ॥५८-५९॥

अयं पवित्रमौलिर्मे स्तवराजः त्वयाशिव । प्रकाशितोऽति गोप्योऽपि मत्प्रसादात्सुरोत्तम ॥
यः पठेदिदमग्रे मे पूजाकाले प्रयत्नतः । तस्ये हा मुत्र किञ्चिन्न वस्तुस्यादृदृगगोचरम् ॥
अन्वयः--हे सुरोत्तम ! हे शिव ! पवित्र मौलिः अतिगोप्योऽपि यं मे स्तवराजः मत्प्रसादात् त्वया प्रकाशितः ॥६०॥ पूजा काले यः पुरुषः मे अग्रे इदं स्तवराजं प्रयत्नतः पठेत् तस्य अमुत्र च दृगगोचर किञ्चित् वस्तु न ॥६१॥ अनुवाद--हे सुरोत्तम शिव ! परम पवित्र, परमगोप्य, मेरा यह स्तवराज मेरे प्रसाद से आपके द्वारा प्रकाशित हुआ ॥६०॥ पूजा काल में जो व्यक्ति मेरे आगे इस स्तवराज का प्रयत्न पूर्वक पाठ करेगा । उसे इस लोक और परलोक में कोई भी वस्तु अदृगगोचरम् अर्थात् अप्राप्य नहीं होगी ॥६१॥ पावन से पावनतम मेरा, अतिगोप्य सुस्तवराज यहाँ । मेरे प्रसाद से व्यक्त हुआ, भवदीय सु मुख से मंजु यहाँ ॥ पूजन वेला में कर प्रयत्न, जो सन्तत इसका पाठ करे । लौकिक परलौकिक ज्ञान सभी, उसके दृग मानस मध्य भरे ॥
विशेष--उपर्युक्त फलश्रुतिनिष्काम भाव से पाठ करने की कही गई ॥६०-६१॥
धनं धान्य यशः पुत्रानैश्वर्यमति मानुषम । प्राप्येहामोदते भूयो मत्पदं तद्व्रजेत्सह ॥
यद्यल्लोकोत्तरं वस्तु त्रिपुलोकेषु दृश्यते । तत्सर्वमस्य पाठेन प्राप्नुयाद्भुवि मानवः ॥
अन्वयः--धनं धान्यं यशः पुत्रान् अतिमानुष ऐश्वर्यं इह संसारे प्राप्य मोदते, भूयः स भक्तः हर्षेण तत् मत्पदं व्रजेत ॥६२॥ त्रिपुलोकेषु यत् यत् लोकोत्तरं वस्तु दृश्यते, तत्सर्वं अस्य पाठेन भुवि मानवः प्राप्नुयात् ॥६३॥ अनुवाद—इस स्तवराज का पाठ-कर्ता भक्त, धन धान्य यश पुत्र एवं अतिमानुष ऐश्वर्य को इस संसार में प्राप्तकर प्रसन्न होगा, पुनः अत्यन्त हर्षपूर्वक मेरे उस परमपद को प्राप्त होगा ॥६२॥ तीनों में जो जो भी लोकोत्तर वस्तुयें देखने में आती हैं, वे सब पृथ्वी में ही इसके पाठ से मनुष्य प्राप्त कर लेगा ॥६३॥ धन धान्य सुयश से पुत्रों से वह व्यक्ति पूर्ण हो जायेगा । अति मानुष भोगैश्वर्य विपुल, इस जगतीतल में पायेगा ॥ आयुष्य पूर्ण फिर होने पर, उस परमधाम को जाता है । जिस पद को पाकर फिर कोई, इस भू पर लौट न आता है ॥६२॥ तीनों लोकों में जो जो भी, लोकोत्तर वस्तु दृष्टि आती । देखीया सुनीं गई जग की, जो भी उसके मन को भाती ॥ विधि पूर्वक पाठ सुकर्ता को, वे यहीं सुलभ हो जायेंगी । कृत कृत्य स्वयं हो जाने को उसको सेवा अपनायेंगी ॥६३॥ विशेष—प्रस्तुत छन्दों में इस स्तवराज के सकाम पाठ की फल श्रुति कही गई है ॥६२॥ इस छन्द से भी सकाम अनुष्ठान की फल श्रुति कही गई है ॥६३॥
इदं मे परमैकान्तं रहस्यं सुरसत्तम । न प्रकाश्यं त्वया शंभो सठायभाव द्वेषिणे ॥६४

अन्वयः—हे सुरसत्तम शम्भो ! इदं मे परमैकान्तं रहस्यं, भाव द्वेषिणे शठाय त्वया न प्रकाश्यम् ॥६४॥ अनुवाद—हे देव श्रेष्ठ शिव जी ! यह मेरा परमैकान्तिक रहस्य, दूषित भाव वाले मूर्खों के समक्ष कभी प्रकाशित नहीं करेंगे। हे सुरसत्तम ! हे महामन्यु ! यह परमैकान्त रहस्य युक्त। स्तवन न उसे व्यक्त करिये, जो हठी तथा शठ भाव युक्त ॥ विशेष—प्रस्तुत छन्द में इस स्तवराज को अनाधिकारियों के मध्य व्यक्त करने की आज्ञा नहीं है। जैसा अन्यत्र भी निर्देश है। यथा—यह न कहिय शठ ही हठसीलहि। जो मन लाय न सुनहरि लीलहि ॥ (श्री रा०च०मा०उ०कां) ॥६४॥

भक्तिर्यस्यास्ति देवेशे सर्वैश्वर्ये तथा मयि। गुरौ सर्वात्म भावेन विद्यते भक्तिरुत्तमा ॥
तस्मै देय त्वया शम्भो भावनार्द्रं हृदे गुरौ। सर्वभूत हितार्थाय शान्ताय सौम्य मूर्तये ॥

अन्वयः—त्वया यस्य पुरुषस्य, सर्वैश्वर्यै देवेशे (श्री रामे) तथा मयि सर्वात्मभावेन भक्तिः स्यात् यस्य गुरौ उत्तमाभक्तिः विद्यते, सौम्यमूर्तये शान्ताय, सर्वभूत हितार्थाय गुरौ भावनार्द्रं हृदे तस्मै देयम्। अनुवाद—जिस पुरुष की सर्वैश्वर्य सम्पन्न, देवों के स्वामी श्री राम जी में तथा मुझमें, सर्वात्म भाव से भक्ति हो, तथा जिसकी गुरु में उत्तमाभक्ति हो, उस सौम्यमूर्ति, शान्तचित्त वाले सर्वभूतों (प्राणिमात्र) के हित में परायण आचार्यभावना से प्रेमार्द्र हृदय वाले भक्त को ही आप यह स्तवराज देना। "देवेश्वर राघवेन्द्र संयुत, मुझमें हो जिनकी दृढाशक्ति। जिनको श्री गुरुपद कंजों में निर्दम्भ सदा उत्तमाभक्ति ॥ आचार्य प्रीति से प्रेमिल उर, जो शान्त सौम्य चित वाले हों। उन सर्वभूत हित निरतों को, इसको शिव ! देने वाले हों" विशेष—इस छन्द में भी अधिकारी का निरूपण है। युगलनाम, लीला धाम के अनुरागियों को ही इस तत्त्व (श्री जानकी स्तवराज) अधिकारी स्वीकार किया गया है ॥६५-६६॥

इत्युक्त्वा भावनामूर्तिः सीता जनकनन्दिनी कृपापात्राय तस्मै सा पुनः प्रादाद्वरान्तरम्

अन्वयः—भावनामूर्तिः जनकनन्दिनी सा सीता कृपात्राय तस्मै श्री शिवाय इत्युक्त्वा पुनः वरान्तरं प्रादात् ॥६७॥ अनुवाद—भावनामूर्ति जनकनन्दिनी श्री सीता जी ने कृपापात्र श्री शिवजी से ऐसा कहकर, पुनः वरदान दिया ॥ पद्यानुवाद—भावना मूर्ति वैदेही ने श्री शिव से इतना बतलाकर, उन कृपापात्र को और और, वरदान दिया अति हर्षाकर ॥ होगये धन्य शंकर भोले, जीवन का परम लाभ पाया। मुद गये नयन वह गौर वपुष, ज्योतित अन्तर में प्रगटाया ॥ विशेष—"भावनामूर्तिः" कहकर ग्रन्थकार ने श्री राजकिशोरी जू के रसात्मकस्वरूप (पंचरसात्मक) की ओर संकेत किया। श्री शिव जी के समक्ष अब श्री सीता जी किसी विशिष्ट "सम्बन्ध" भाव की पुष्टि पूर्वक प्रतिष्ठित हैं ॥६७॥

मूल—सर्व दुःख प्रशमनं जानक्यास्तु प्रसादतः ॥६८॥

अन्वयः—तु जानक्याः प्रसादतः सर्वदुःख प्रशमनं अभूत ॥ अनुवाद—पुनः श्रीजानकी जी की कृपा से समस्त दुखों का शमन (नाश) हुआ ।

इति श्री अगस्त संहिता अन्तर्गत परम रहस्ये श्री जानकी स्तवराजः सम्पूर्णम् ॥

* श्री मिथिलेशकिशोरी जू का चरम शरणागत मन्त्र *

कृपारूपिणि कल्याणि रामप्रिये श्री जानकि । कारुण्यपूर्णनयने दयादृष्ट्यावलोकय ॥

* श्री किशोरी जू का व्रत *

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम् ।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥

* श्री मैथिली शरणागति पञ्चकम् *

सर्वजीव शरण्ये श्रीसीते वात्सल्य सागरे । मातृमैथिलि सौलभ्ये रक्षमां शरणागतम् ॥१॥ कोटिकन्दर्प लावण्यां सौन्दर्य्यैक स्वरूपताम् । सर्वमङ्गल माङ्गल्यां भूमिजां शरणं व्रजे ॥२॥ शरणागत दीनार्त परित्राण परायणाम् । सर्वस्यार्ति हरेणैक धृतव्रतां शरणं व्रजे ॥३॥ सीतां विदेह तनयां रामस्य दयितां शुभाम् । हनुमता समाश्वस्तां भूमिजां शरणं व्रजे ॥४॥ अस्मिन् कलिमला कीर्णे काले घोर भवार्णवे । प्रपन्नानां गतिर्नास्ति श्रीमद्राम प्रियां विना ॥५॥

* श्री जानकी स्तवराज के पाठ का विनियोग *

ॐ अस्य श्री जानकीस्तवराज स्तोत्रस्य श्रीरामचन्द्र ऋषिः—
वसन्ततिलका छन्दः श्री सीता देवता श्री युगल वर कमलयोरहेतु की भक्तिः प्राप्त्यर्थे श्री जानकीस्तवराजस्तोत्र पाठे विनियोगः ॥

श्रीरामवल्लभा ध्यानम्—रामां राजीवनयनां रामवक्षस्थलालयाम् । रामाङ्कपीठे राजन्तीं वन्दे श्री रामवल्लभाम ॥ विदेह तनयां देवो मन्दस्मित मुखाम्बुजाम् । इन्दीवर विशालाक्षीं वन्दे श्री रामवल्लभाम् ॥

* श्री जानकी गायत्री *

ॐ श्री जनकनन्दिन्यै विद्महे श्री रामवल्लभायै धीमही तन्नो सीता प्रचोदयात् ॥

टीका लेखक— "मानस केसरी" पं० श्री वाल्मीकिप्रसाद मिश्र एम० ए० एम० एड० रिसर्चस्कालर-रींवां विश्वविद्यालय-आवास – श्रीनिधिनिकुञ्ज – विराटनगर-शहडाल (म० प्र०)

❀ प्रस्तावना ❀

कोई भी जाति अपने दर्शनशास्त्र के आधार पर ही लौकिक पारलौकिक विषयों का विचार करती है, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा, जगत् का क्या स्वरूप है, इसको बताने वाला कौन है, यह जड़ है या चेतन, परमसुख शान्ति का स्वरूप क्या है उसका साधन कौन है इन बातों का विचार दर्शनशास्त्र में किया जाता है 'दृश्यते अनेन' अर्थात् जिसके द्वारा सत्यासत्य देखा जा सके उसे दर्शन कहते हैं। नित्यानित्य द्वारा जो मनुष्यों को प्रवृत्तिनिवृत्ति का उपदेश दे उसे शास्त्र (शासनकरण) कहते हैं यह शासन इसे करो इसे न करो दो प्रकार से ही सम्भव है। यथा – 'प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा। पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते ॥

यह दर्शनशास्त्र नास्तिक, आस्तिक भेद से दो प्रकार का है। नास्तिक उसे कहते हैं जो परलोक या ईश्वर को न माने अथवा वेद निन्दक हो। आस्तिक की सत्ता इससे विपरीत आस्था रखती है। नास्तिकों में चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक वैभाषिक, जैन हैं। आस्तिकों में भी षड्दर्शन हैं, न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, पूर्वमीमांसा-वेदान्त। आस्तिकों में भी श्रुति मात्र प्रमाण मानने वाले श्रौत, तर्क से उपस्थापित अनुमान प्रमाण मानने वाले तार्किक हैं।

चार्वाकदर्शन में देह को ही आत्मा माना गया है, चारु=सुन्दर रमणीय आक=लक्षण को ही चार्वाक सिद्धान्त में स्वीकार किया है यथा—

अङ्गनालिङ्गनाजन्यं सुखमेव पुमर्थता। कण्टकादिव्यथाजन्यं दुःखं निरय उच्यये ॥१॥ लोकसिद्धो भवेद्राजा परेशो नापरः स्मृतः। देहस्य नाशो मुक्तिरस्तु न ज्ञानान्मुक्तिरिष्यते ॥२॥ अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनलानिलः। चतुर्भ्यः खलुभूतेभ्यः चैतन्यमुपजायते ॥३॥ न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः। नैववर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥ ४ ॥ अग्निहोत्रं त्रयोवेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्। बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता ॥ ५ ॥ पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति। स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥६॥ मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्। निर्वाणस्य प्रदीपस्य स्नेहः संवर्धयेच्छिखाम् ॥ ७ ॥ गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्। गेहस्थकृतश्राद्धेन पथितृप्तिरवारिता ॥ ८ ॥ स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्रदानतः। प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥ ९ ॥ यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥१०॥ यदि गच्छेत् परं लोकं देहादेष विनिर्गतः।

कस्माद् भूयो न चायाति बन्धुस्नेह समाकुलः ॥११॥ ततश्च जीवनो पायो ब्राह्मणे-विंहतास्त्विह । मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद् विद्यते क्वचिद् ॥ १२ ॥ त्रयोवेदस्य कर्त्तारोभण्डधूर्त निशाचराः । जर्फरी तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥१३॥ अश्वस्यात्र हि शिश्नं तु पत्नी ग्राह्यं प्रकीर्तितम् । भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्तितम् ॥ १४ ॥ मांसानां खादनं तद्वत् निशाचर समीरितम् ॥

आजका मार्क्सवाद इसी चार्वाक सिद्धान्त पर स्थिर है । चार्वाक सिद्धान्त के ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं । प्रत्यक्ष प्रमाण से भिन्न इनके मत में कोई प्रमाण नहीं है ।

बौद्धदर्शन :—बौद्ध धर्म तीन मार्गों में विभक्त है, हीनयान, महायान, और वज्रयान । हीनयान मत वाले गौतम बुद्ध को एक महापुरुष मानते हैं । यह निवृत्ति प्रधान मार्ग है साधन द्वारा निर्वाण प्राप्त करना इनको अभीष्ट है । इनके आराध्य "अर्हत्" हैं । महायान भक्ति प्रधान मार्ग है इस मत के आराध्य 'बोधिसत्त्व' हैं । हीनयान मत के भावुक भक्तों ने ही इसका विस्तार किया इनका साहित्य संस्कृत भाषा में है । इनके मत में भगवान् बुद्ध अवतार हैं । बौद्धधर्म में तान्त्रिक साधनायें करने वाले व्यक्तियों की शाखा वज्रयान नाम से प्रसिद्ध है । दर्शन की दृष्टि से बौद्धधर्म के चार विभाग हैं । मध्यम दर्शन योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक ।

मध्यम दर्शन :—में सभी पदार्थ क्षणिक हैं किसी का कोई रूप स्थिर नहीं है। परमाणु भी क्षणिक हैं परमाणुओं की अविरल धारा आकृतियां बनाती हैं । क्षणिक होने के साथ सब दुःख रूप हैं । दृश्य जगत् कैसा है इसका बताना शक्य नहीं यह स्वलक्षण है जैसा है वैसा ही है । सब शून्य है किसी भी पदार्थ को सत् असत् नहीं कहा जा सकता । बौद्धिक ज्ञान सत्य है । बाह्य जगत् शून्य है । अप्राप्त की प्राप्ति के लिये शंकान्वित होना 'पर्यनुयोग' ही योग माना गया है । गुरू का उपदेश आचार है । गुरूपदिष्ट का अंगीकरण, उत्तम पर्यनुयोग का न करना अधम, अतः इनको 'माध्यमिक' नाम से प्रसिद्धि हुई । इनके मत में 'सब क्षणिक-क्षणिक है । सब दुःख दुःख है । सब स्वलक्षण स्वलक्षण है' सब शून्य-शून्य हैं । यह एक ही वस्तु में भावना चतुष्टय संभव हैं । यथा—

परिव्राट् कामुकशुनामे कस्यां प्रमदातनौ । कुणपः कामिनी भक्ष्यः इति तिस्रो विकल्पना ॥

ऊपर कथित भावना चतुष्टय से निखिल वासनाओं की निवृत्ति होने पर मोक्ष भी शून्य रूप सिद्ध हुआ । अर्थात् शून्यत्व, क्षणिक, दुःख रूपतादि की भावना करके शून्य में विलीन हो जाना ही मुक्ति है ।

योगाचार :—बुद्ध भगवान् के जिन शिष्यों को केवल आचार से सन्तोष न हुआ उन्होंने योग की भी साधनायें की अतः उनका नाम योगाचार हुआ। इनका दर्शन मानता है कि 'बुद्धिग्राह्य कोई पदार्थ नहीं है बाह्य रूप में बुद्धि ही मूर्त हुई है।

ग्रहण करने वाला, ग्रहण क्रिया, ग्राह्य पदार्थ परस्पर अभिन्न हैं अर्थात् एक हैं सब ज्ञान ही ज्ञान है। नानात्व की प्रतीति भेदवासना के कारण होती है इस वासना प्रवाह की धारा अविच्छिन्न है। पदार्थ के निराकार भाव से तृप्ति नहीं होती, तृप्ति, सन्तोष सदा साकार भाव से है। वाहर के पदार्थ शून्य हैं ज्ञान ही मात्र है बाह्य जगत् से निवृत्त होकर अन्तःकरण में ज्ञानोपलब्धि ही मुक्ति है। ज्ञान की सत्ता मानने के कारण ये विज्ञान वादी कहलाते हैं।

सौत्रान्तिक :— इस मत के अनुयायी भुक्ति मुक्ति दोनों के साधक हैं। इस दर्शन की मान्यता है कि-भावजगत्-पदार्थों का बुद्धि स्थित रूप, और वाहर स्थित दृश्य रूप दोनों सत्य हैं। ज्ञान का शुद्ध रूप 'अहम्' है। 'इदम्' का ज्ञान जाग्रत तथा स्वप्न में रहता है सुषुप्ति में विलीन हो जाता है। अहम् का ज्ञान सुषुप्ति में भी रहता है अतः ये दोनों ज्ञान भिन्न-भिन्न हैं ज्ञाता ज्ञेय नहीं हो सकता। इदम् से प्रतीयमान वाह्य जगत् भी शून्य नहीं है इदम् ज्ञान से ही वाह्य सत्ता का अनुमान होता है। आलय विज्ञान (अहम्) के रहते प्रवृत्ति ज्ञान (इदम्) रहता है अतः वह उससे भिन्न है। एक काल में दो रूपों में एक सत्ता नहीं रह सकती। राग द्वेषादि संस्कार समुदाय दुःख के साधन हैं "सब क्षणिक हैं" यह भावना ही इस दुःख से रक्षा कर सकती है। दुःख, दुःखायतन, दुःख साधन को रोककर विमल ज्ञानोदय मुक्ति है। सूत्र के अन्त भाग को पूछने के कारण इनका सौत्रान्तिक नाम हुआ। सूत्रं यथा—

"उत्पादाद्वा तथागतानामानु पादाद्वा स्थितैवैषां धर्माणां धर्मता धर्मस्थितिता धर्मनियामकताच प्रतीत्यसमुत्पादानुलोमता॥ इति सूत्रान्तं पृच्छति॥ पृच्छतौ सुस्नातादिभ्यः ठक्॥ इति ठक्प्रत्यये तत्सिद्धिः।

बुद्ध ने पहिले सबको शून्य कहा, विज्ञानवादी ने जगदान्ध्यप्रसंग का आपादन करते हुये सर्वशून्यत्व को असम्भव कहकर "ज्ञान मात्र" को स्वीकार किया। वाह्यार्थ के विना ज्ञान कैसे हुआ अतः वाह्यार्थ के अस्तित्व को स्वीकार किया गया। एवं कियत्पर्यन्तं सूत्रस्यान्तो भवष्यतीति यैः पृष्टं ते सौत्रान्तिकाः॥

वैभाषिक :—वाह्य, अन्तर, दोनों पदार्थों को मानता है चार्वाक के जड़वाद को यह दर्शन स्वीकार किया है। विज्ञेय, अनुमेय है इस विरुद्ध भाषा को वर्णन करने वाले वैभाषिक हुये। इस विज्ञेमानुमेयवाद में प्रत्यक्ष सिद्ध अर्थ का अभाव

है अतः कहीं व्याप्ति गृहीत नहीं होगी इसलिये अनुमान प्रमाण भी अनुपपन्न हो गया। इस मत का सारांश यह है। यथा—

कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षं निर्विकल्पकम्। विकल्पो वस्तु निर्भासादसंवादादुपल्लवः ॥ १ ॥ ग्राह्य वस्तु प्रमाणं हि ग्रहणं यदितोऽन्यथा। न तद्वस्तु न तन्मानं शब्दलिङ्गेन्द्रियादिजम् ॥ २ ॥

उपदेश के भेद होने पर भी तत्त्व भेद नहीं होता। तत्त्व शून्यता रूप एक ही है हीन मध्यम और उत्कृष्ट बुद्धि शिष्यों के कारण ही उसकी मान्यतायें भिन्न-२ प्रकार की हुई हैं। यथा—

देशना लोकनाथानां सत्त्वाशय वशानुगाः। भिद्यन्ते वहुधा लोक उपायैर्वहुभिः पुनः ॥ १ ॥ गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभय लक्षणा। भिन्ना हि देशना भिन्ना शून्यताद्वय लक्षणा ॥ २ ॥

बौद्धमत में द्वादशायतन पूजा ही सर्वश्रेयस्करी मानी गयी है यथा—

अर्थानुपार्ज्य वहुशो द्वादशायतनानि वै। परितः पूजनीयानि किं मन्यैरिह पूजितैः ॥१॥ ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव तथा कर्मेन्द्रियाणि च। मनो बुद्धिरिति प्रोक्तं द्वादशायतनं बुधैः ॥ २ ॥

विवेक विलास में बौद्धमत का संक्षेप इस प्रकार कहा गया है। यथा—

बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभंगुरम्। आर्यसत्याख्यया तत्त्व चतुष्टयमिदं क्रमात् ॥ १ ॥ दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः। मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः ॥२॥ दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्तिताः। विज्ञान वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च ॥ ३ ॥ पञ्चेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पञ्चमानसम्। धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानितु ॥ ४ ॥ रागादीनां गणो यस्मात्समुदेति नृणां हृदि। आत्मात्मीय स्वभावाख्याः स स्यात् समुदयः पुनः ॥५॥ क्षणिका सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा। स मार्गइति विज्ञेयः स च मोक्षोभिधीयते ॥६॥ प्रत्यक्षमनुमानञ्च प्रमाणं द्वितीयं तथा। चतुष्प्रस्थानिकाः बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः ॥ ७ ॥ अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण वहुमन्यते। सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न वहिर्मतः ॥ ८ ॥ आकार सहिता बुद्धिर्योगाचारस्य संमता। केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः ॥ ९ ॥ रागादि ज्ञान सन्तान वासनोच्छेद सम्भवा। चतुर्णामपि वौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता ॥ १० ॥ कृत्तिः कमण्डलुर्मौण्ड्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम्। संघो रक्ताम्बरत्वञ्च शिश्रिये बौद्ध भिक्षुभिः ॥ ११ ॥

जैनदर्शन :—संसार के पदार्थों को क्षणिक मानने पर कर्म के कर्त्ता को भी क्षणिक मानना पड़ेगा। क्षण भेद से वस्तु में भेद हो जाता है अर्थात् किसी कर्म को जो कर्ता था दूसरे क्षण में वह नहीं रहा अतः कर्म का फल किसे भोगना पड़ेगा, इसलिये क्षणिक पक्ष ठीक नहीं। फल भोगने वाला अपने पूर्वकृत कर्मों का स्मरण करता है इसलिये उसे स्थिर मानना चाहिये। क्योंकि स्मरण, अनुभव समानाधिकरण में ही सम्भव है अतः आत्मा स्थिर सिद्ध हुआ, यह जगत् अनादि है सत् क्षणिक नहीं है उत्पत्ति विनाश शून्य है।

जगत् में चिदचिद् ही दो तत्त्व हैं। इसके विचार को विवेक कहते हैं। यथा :-

चिदचिद् द्वे परे तत्वे विवेकस्तद् विवेचनम्। उपादेयमुपादेयं हेयं हेयं च कुर्वतः। हेयं हि कर्तृ रागादि तत्कार्यम विवेकिता। उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैक-लक्षणम् ॥ २ ॥

अन्य वस्तु को अपने काम में लाने वाले को चेतन कहते हैं इससे ये भिन्न जड़ पदार्थ हैं। विश्व में पांच तत्त्व सत्ताधारी हैं, जीव, आकाश, धर्माधर्म और पुद्गल। मुक्त तथा संसारी भेद से जीव दो प्रकार का है। संसारियों में कुछ मन रहित (स्थावर) और कुछ मन सहित प्राणी हैं। अवकाश दाता आकाश है। मुक्ति का साधन धर्म और अधर्म उसका प्रतिबन्धक है। रूप रस वर्ण वाले को पुद्गल कहते हैं वह अणु स्कन्ध भेद से दो प्रकार का है पृथ्वी जल वायु तेज यही चार प्रकार का पुद्गल है। बौद्धमत के अनुसार ईश्वर के विषय में निम्नलिखित शंका की गई है। यथा—

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः। दृष्टो न चैक देशोऽस्ति लिंगं वा योऽनुमापयेत् ॥ १ ॥ न चागमविधिः कश्चिन्नित्य सर्वज्ञ बोधकः। न च तत्रार्थवादानां तात्पर्यमपि कल्प्यते ॥ २ ॥ न चान्यार्थप्रधानैस्तै तदस्तित्वं विधीयते। न चानुवदतुंशक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः ॥ ३ ॥ अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान्। कृत्रिमेणत्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते ॥ ४ ॥ अथ तद् वचनेनैव सर्वज्ञाऽज्ञैः प्रतीयते। प्रकल्पयेत्कथं सिद्धिरन्योन्याश्रययोस्तयोः ॥ ५ ॥ सर्वज्ञोक्त-तया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता। कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धिमूलान्तरादृते ॥ ६ ॥ असर्वज्ञप्रणीतात्तु वचनान्मूलवर्जितात्। सर्वज्ञमवगछन्तः स्ववाक्यात् किं न जानते ॥ ७ ॥

उक्त तर्कों का खण्डन करके आर्हत दर्शन में अनुमान प्रमाण द्वारा सकल पदार्थ साक्षात्कारी विलक्षण आत्मा (ईश्वर) की सिद्धि की गई है—

तदुक्तं वीतरागस्तुतौ—कर्तास्ति कश्चिज्जगतः स चैकः स सर्वगः स स्ववशः स नित्यः। इमाः कुहेवाक विडम्बनास्युः तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥ १ ॥

आस्तिक दर्शनों को शास्त्र कहते हैं षड्दर्शन या षड्शास्त्र पर्याय हैं। ये दर्शन शास्त्र अधिकारी भेद से तत्त्व प्रतिपादन करते हैं। सर्वज्ञ महर्षियों के तत्त्व ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है। श्रुति पुराणादि में कथित समग्रदर्शन को समझ कर ही उनका प्रतिपादन हुआ है। अधिकारी के ही भेद से उनकी प्रतिपादन शैली भिन्न सी दिखलाई पड़ती है। जैसे प्रथम कक्षा के विद्यार्थी उत्तम कक्षा की बात को तत्काल नहीं समझ सकते उन्हें स्थूल से सूक्ष्म की ओर लाने में कुछ विलम्ब लगता है उसी प्रकार सूक्ष्म ग्रहण करने वाली जिसकी बुद्धि नहीं है उसके सामने स्थूल तर्क उपस्थित किये गये हैं। वे तर्क पुनः सूक्ष्म रूप से भी वस्तु विवेचन करते हैं!

वैशेषिक दर्शन :—महर्षिकणाद ने इस दर्शन को लिखा है इनके मत में ईश्वर, जीव ये दो ही नित्य तत्त्व हैं। अखिल विचारशील जन्तु दुःख छोड़ना चाहते हैं दुःख स्वभावतः प्रतिकूल वेदनीय सर्वानुभव सिद्ध है। दुःख छूटने का उपाय परमेश्वर का साक्षात्कार है। यथा—

न्यायचर्चेयमीशस्य मननव्यपदेशभाक्। उपासनैव क्रियते श्रवणानन्तरागता ॥ १ ॥ न्या० कुसु० ॥

अभ्युदय निःश्रेयस की सिद्धि प्रदान करने वाले धर्म का आचरण करना जीव का कर्त्तव्य है। धर्माचार का विधान वेद में है वेद ईश्वर की वाणी है। वेद, धर्म का वर्णन उद्देश लक्षण द्वारा करते हैं। द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव यही सात पदार्थ हैं। पृथ्वी जल तेज वायु आकाश काल दिक् आत्मा और मन ये नौ द्रव्य हैं। रूप रस गन्ध आदि चौबीस गुण हैं इनमें रूप सात प्रकार का रस छह प्रकार का गन्ध दो प्रकार का है। बुद्धि भी संशय निश्चय भेद से दो प्रकार की है। निश्चयात्मिका बुद्धि प्रमा संशयात्मिका अप्रमा (अज्ञान) कहलाती है। प्रमा की उत्पत्ति प्रत्यक्ष तथा अनुमान के द्वारा होती है। अप्रमा बुद्धि संशय, विपर्यय, स्वप्न भेद से तीन प्रकार की है। कर्म (क्रिया) उत्सर्पणापसर्पण आदि भेद से पाँच प्रकार का है। पदार्थों में एकता स्थापन करने वाले को सामान्य (जाति) कहते हैं। जीव ईश्वर आदि अतीन्द्रिय पदार्थ में भेद करने वाले को विशेष कहते हैं। पदार्थ के नित्य सम्बन्ध को समवाय कहते हैं। अभावप्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्या भाव एवं अत्यन्ताभाव भेद से चार प्रकार का होता है। फल कामना रहित ज्ञान पूर्वक किये हुये कर्म से विशुद्ध कुल में उत्पन्न होकर दुःख विगमोपाय वाला जिज्ञासु आचार्य के समीप जाकर षड् पदार्थ के तत्त्व ज्ञान द्वारा अज्ञान निवृत्ति पूर्वक रागादि रहित होकर दग्धेन्धनअनलवत् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है इस दर्शन का प्रारम्भ इस प्रकार है। यथा—

"अथातो धर्मं व्याख्या स्यामः।" "यतोऽभ्युदय निश्श्रेयस सिद्धिः स धर्मः ॥ तद्वचनाद् आम्नायस्य प्रामाण्यम् ॥ वैशे० द० सूत्र १–२–३ ॥

न्यायदर्शन :—गौतम मुनि का बनाया न्यायशास्त्र है इनका दूसरा नाम अक्षपाद भी है अतः यह दर्शन अक्षपाददर्शन के नाम से भी विख्यात है। इसमें पाँच अध्याय हैं प्रत्येक अध्याय में दो-दो आन्हिक हैं। इस दर्शन का प्रथम सूत्र "प्रमाण प्रमेय संशय प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्तावयव तर्क निर्णयवाद जल्प वितण्डा हेत्वाभासच्छल जाति निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निश्श्रेयसाधिगमः" है। इन सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यथार्थ ज्ञान (प्रमा) के करण को प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द यही चार प्रमाण हैं। आत्मा, देह, इन्द्रिय, अर्थ (विषय) मन, बुद्धि, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख, और अपवर्ग इनका ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। इच्छा द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख तथा ज्ञान जीव के चिन्ह हैं। अर्थ सब परमाणु रूप हैं। पूर्वकृत कर्म से शरीर का निर्माण है ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच पञ्चमहाभूतों के सूक्ष्मांश से बनी हैं। मन का रूप अणु है वह भीतर की इन्द्रिय है। ज्ञानोपलब्धिमात्र बुद्धि है वह अनित्य है। जल्प, वितण्डा को यथार्थ समझकर उससे सावधान रहने की आवश्यकता है। जब कोई पुरुष अपने पूर्व पुण्य परिपाक समुद्भूत आचार्योपदेश से दुःखायतन, दुःखानुषक्त, इस प्रपञ्च को देखता है तभी हेय जानकर इससे निवृत्त होना चाहता है। इसकी निवृत्ति तत्त्वज्ञान से होती है। तत्त्वज्ञान मिथ्याज्ञान को हटाता है। मिथ्याज्ञान के नाश होने पर दोष अपने आप नष्ट हो जाते हैं। दोष के हटने पर प्रवृत्ति नष्ट होती है। प्रवृत्ति के अपाय से जन्म नहीं होते। जन्म न होने से दुःख अत्यन्त निवृत्त हो जाता है। आत्यन्तिकी दुःखनिवृत्ति ही मोक्ष है। यथा—

दुःख जन्म प्रवृत्ति दोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः॥ गौ० सू० १।१।२॥

सांख्यदर्शन :— महर्षि कपिलदेव प्रणीत सांख्यशास्त्र है यह शास्त्र छः अध्यायों में वर्णित है। इस दर्शन में मूलतः दो अनादि तत्त्व हैं। प्रकृति, एवं पुरुष। जगत् में चार प्रकार के पदार्थ हैं प्रकृति, विकृति, प्रकृति-विकृति, तथा दोनों से भिन्न (पुरुष)। प्रकृति किसी का कार्य नहीं है अतएव वह केवल प्रकृति है। प्रकृति से महत्तत्त्व, उससे अहंकार अहंकार से पञ्च तन्मात्रायें उत्पन्न हुये। अतः महत्तत्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रायें प्रकृति विकृति स्वरूप हैं। ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय पञ्चमहाभूत और मन केवल विकृति हैं। उभयभिन्न पुरुष (जीव) है। यह निर्लिप्त उदासीन साक्षी है। प्रकृति अचेतन विध विचित्र रचना शालिनी है। पुरुष के समीप रहने से चेतन सी प्रतीत होती है। प्रकृति पुरुष के विवेक से ही मोक्ष को प्राप्ति होती है। यथा—

पञ्चविंशति तत्त्वज्ञः यत्र कुत्राप्याश्रमे वसन्। जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः॥ १॥

सत्त्व, रजः, तम की सम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं तीनों का धर्म क्रम से सुख दुःख, मोह है। यह सम्पूर्ण जगत् त्रिगुणात्मक है। अहंकार भी तीन प्रकार का है उसके सात्विक अंश से पञ्चज्ञानेन्द्रिय, एवं मनउत्पन्न हुआ है। तामस अंश से पञ्चतन्मात्रायें उत्पन्न हुईं राजस अंश दोनों का सहायक है। पुरुष अनन्त हैं, क्योंकि यदि एक ही होता तो एक के जन्म होने पर सबका जन्म होता एक के मरने पर सभी मृत होते एक के बधिर होने पर सब बधिर हो जाते किन्तु ऐसा नहीं होता। यथा—

जन्ममरणकरणानां प्रति नियमादयुगपद्प्रवृत्तश्च। पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्य विपर्यान्चैव ॥ १८ ॥ सांकारिका ॥

यह पुरुष प्रकृति के कर्तृत्व को अपने में मानता है। पुण्योदय से जब पुरुष आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, इन त्रिविध दुःखों के नाश की इच्छा करता है तब प्रकृति उसकी इच्छा सफल करती है। पुरुष की भोगेच्छा न होने पर प्रकृति स्वतः शान्त हो जाती है। क्योंकि प्रकृति की समस्त चेष्टा पुरुष के उपभोग के लिये ही है, अपने लिये नहीं। अतः वासना नाश होने पर प्रकृति पुनः बन्धन उपस्थित नहीं करती। बौद्ध दर्शन में असत् से सत् की उत्पत्ति, न्यायदर्शन में, सत् से असत् की उत्पत्ति, सांख्यदर्शन में सत् से सत् की ही उत्पत्ति का प्रतिपादन हैं। यथा—

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्व सम्भवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात्कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥ सां का० ९ ॥

अतः इस दर्शन में सत्कार्यवाद का सिद्धान्त है। "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।" गीता के श्लोक द्वारा भी इसी वाद की पुष्टि मिलती है। प्रकृति पुरुष का सम्बन्ध पंगु अन्ध के समान हुआ है, पुरुष के मोक्ष के लिये ही प्रकृति की प्रवृत्ति है।

"वत्सविवृद्धि निमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य। पुरुष विमोक्ष निमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य" ॥ सां० का० ५७ ॥ "पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य। पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि सम्बन्धस्तत्कृतः सर्गः ॥ सां० का० २१ ॥

सांख्य सेश्वर तथा निरीश्वर भेद से दो प्रकार का है।

योगदर्शन :—इस दर्शन का दूसरा नाम साँख्य प्रवचन है यह पतञ्जलि मुनि प्रणीत है। इसमें चार पाद हैं, समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्य-पाद। पतञ्जलि मुनि सेश्वर सांख्य के प्रवर्तक हैं। प्रथमपाद में "अथयोगानुशासनम्" सूत्र से योगशास्त्रारम्भ की प्रतिज्ञा करके "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" से योग के लक्षण को कहकर समाधि का विस्तृत विवेचन किया गया है। दूसरे पाद में—

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ २१ ॥

सूत्र से असमाहित चित्तवृत्ति वाले पुरुष के लिये यमादि पञ्च बहिरङ्ग साधन का उल्लेख है। तृतीय में—

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा" ॥ ३ । १ ॥

सूत्र से हृदयकमल रूप देश में चिन्तनीय एकाग्रता को धारणारूप से प्रतिपादन किया है। धारणा, ध्यान, समाधि इन अन्तरङ्ग साधनों को "संयम" पद से कहा गया है। संयम का मुख्यफल मोक्ष और अवान्तर फल ऐश्वर्य प्राप्ति है। चौथे पाद में—

जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ॥ पा० यो० सू० ॥ ४ । १ ॥ से

जन्म, औषधि, मन्त्र, तप, समाधि से जायमान सिद्धियों का निरूपण है यमनियमादि अष्टाङ्गयोग के द्वारा प्रकृति पुरुष के भेद का साक्षात्कार होता है।

उससे पुरुष के असङ्ग का ज्ञान होकर दुःखात्यन्ताभाव रूप मोक्ष की सिद्धि होती है। सांख्यदर्शन में कथित पञ्चविंशतितत्त्व पतञ्जलि मुनि को अभिमत हैं इनके अतिरिक्त क्लेश, कर्म विपाक, अन्तःकरण के संस्कार से अपरामृष्ट परमेश्वर को भी स्वीकार किया गया है। वह ईश्वर अपनी इच्छा से एक अथवा युगपद् अनेक शरीर धारण कर लेता है। वह लौकिक, वैदिक सम्प्रदाय का प्रवर्तक है। संसार रूपी अग्नि में (अविद्या, स्मिता, राग द्वेष और अभिनिवेश) में तपते हुये प्राणियों के ऊपर दया करने वाला है। समाधि (भावना) संप्रज्ञात, असंप्रज्ञात, भेद से दो प्रकार की होती हैं।

सम्यक् प्रज्ञायतेऽस्मिन प्रकृतेः पृथक् ध्येयम् ॥ इति ॥

सम्प्रज्ञात, इससे विरुद्ध असम्प्रज्ञात है। इस सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद हैं। यथा :—

' वितर्क विचारानन्दास्मिता रूपानुगमात्संप्रज्ञातः ॥ पा० यो० सू० १।१७।

इस दर्शन में दो प्रकार की मुक्ति मानी गयी हैं। महत्तत्व प्रभृति सूक्ष्मभूत पर्यन्त में लय, प्रकृतिकैवल्य है'। बुद्धि तत्त्व से सम्बन्ध न होकर चितिशक्ति रूप जो पुरुष की स्वरूप प्रतिष्ठा है उसे पुरुष कैवल्य कहते हैं। इसके बाद जन्तु का जन्म नहीं होता क्योंकि क्लेश के बीज ही नष्ट हो गये। यथा—

"पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्य स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिः ॥ पा० यो० सू० ४ । ३४ ॥

चिकित्साशास्त्र के जैसे चार अंग हैं रोग, रोग हेतु, आरोग्य, और औषधि इसी प्रकार योगशास्त्र में भी 'संसार, संसार का कारण, मोक्ष, मोक्ष के उपाय' इन चारों अंगों का विवेचन है। दुःखमय संसार हेय है, अविद्या ही संसार का बीज है। इसकी आत्यन्ति की निवृत्ति ही मोक्ष है। इसका उपाय प्रकृति पुरुष विवेक का साक्षात्कार है।

जैमिनिदर्शन :—धर्मानुष्ठान से अभिमत धर्म की सिद्धि श्री जैमिनि मुनि ने मानी है। इस दर्शन का आदिम सूत्र "अथातो धर्म जिज्ञासा" है धर्म का क्या लक्षण है यह उनके सूत्र में ही देखें। यथा – चोदना लक्षणोऽर्थोधर्मः" १ । २ ॥ सांख्य, योग और उत्तरमीमांसा में तत्त्वज्ञान के लिये पुण्यकर्म का उदय आवश्यक है, अतः कर्मों का विचार करने के लिये पूर्व मीमांसादर्शन की महर्षि जैमिनि ने रचना की। उत्तम कर्माधिकारी के लिये योग है, योग द्वारा कामनाहीन मुमुक्षु पुरुष वैराग्य तथा साधना के अभ्यास से समाधि तक पहुँचकर मुक्त हो जायेगा। किन्तु जो विरक्त नहीं है उसे उपभोग चाहिये उसके लिये पूर्वमीमांसा दर्शन कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। यह मीमांसा दर्शन कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। यह मीमांसा दर्शन वारह अध्यायों में वर्णित है। पहिले अध्याय में विध्यर्थवाद मन्त्र स्मृति नाम धेय शब्द राशि का प्रामाण्य कहा गया है। दूसरे में उपोद्घात-कर्म के भेद, प्रमाण, तथा अपवाद का वर्णन है। तीसरे अध्याय में श्रुति, लिङ्ग, वाक्य प्रकरण, स्थान, समाख्या, इन छः प्रमाणों का वर्णन करते हुये, एक स्थान पर प्रमाणद्वय को उपस्थिति होने पर पूर्व की अपेक्षा पर को दुर्बल इसलिये माना गया है कि अर्थ प्रतीति विलम्बोपस्थापित है। चतुर्थ अध्याय में प्रधान भूत अभिक्षा दध्यानयन की प्रयोजिका है या नहीं, तथा 'जुहू पर्णमयी' में फल के भावाभाव का चिन्तन राजसूय में अक्षद्यूतादि का विचार किया गया है। पाँचवें में श्रुत्यादि का क्रम तथा उनके प्राबल्य-दौर्बल्य का विचार है। छठें में अधिकारी, अधिकारी-धर्म, द्रव्य, मुख्याभावे प्रतिनिधि, कालातिक्रमण में प्रायश्चित्त आदि का विचार किया गया है। सातवें में प्रत्यक्ष वचन द्वारा अतिदेश, अतिदेश का शेष, नामातिदेश, लिङ्गातिदेश का विचार है। अष्टम में स्पष्ट लिङ्ग द्वारा अतिदेश, अस्पष्ट लिङ्गातिदेश प्रबललिङ्गातिदेश, आदि का विचार है। नवम में देवता, लिङ्ग, संख्यावाचक पदों का प्रयोग विशेष में परिवर्तन आदि का विचार किया गया है। दशम में वाध हेतु वाधकारण आदि का विचार है। एकादश में अनेक के उद्देश्य से एक वार कृतकर्म (तन्त्र) तन्त्रावाप, तन्त्र विस्तार का चिन्तन है। बारहवें अध्याय में प्रसङ्ग, तन्त्रिनिर्णय आदि का विचार किया गया है। इस दर्शन में वेद नित्य है, उनके मन्त्र ही देवता हैं। इस दर्शन का उद्देश्य शास्त्रों में निष्ठा उत्पन्न करके अधर्म की निवृत्ति', तथा धर्म में प्रवृत्ति करना है।

उत्तरमीमांसा दर्शन :—भगवान् . वेदव्यास द्वारा प्रणीत इस दर्शन को "वेदान्त-दर्शन" कहते हैं। ब्रह्म की जिज्ञासा के लिये इस दर्शन की प्रवृत्ति है इसमें चार अध्याय, प्रत्येक अध्याय में चार-चार पाद हैं "जन्माद्यस्य यतः" वे० सू० १।१।२॥ जिससे सृष्टि, स्थिति, प्रलय, होते हैं वह ब्रह्म है। समस्त दर्शन इसी ब्रह्म लक्षण की व्याख्या है। पुराणों में श्रुति द्वारा जो दर्शन आया है। उसी को सूत्र रूप से व्यवस्थित किया गया है। श्रीव्यासजी के इस उत्तरमीमांसा दर्शन (ब्रह्म-सूत्र) को लेकर आचार्यों ने अपने-अपने